प्राक्कथन

औज़ार में यह खासियत है कि शारीरिक श्रम-शक्ति कम होने पर भी कार्यसिद्धि सुगम हो जाती है। उपकरणों का खोज जब तक नहीं हुआ था तब तक जीवन में उन्हीं की सत्ता थी जो अधिक-से-अधिक श्रम कर सकते थे। भीमसेन और हरक्युलीस के शरीर में हजारों हाथियों की शक्ति थी। जब औज़ारों की खोज नहीं हुई थी उस ज़माने में इसी प्रकार के मल्लों की सत्ता चलती होगी। उसके बाद जब उपकरणों का आविष्कार हुआ तो बाहुबल की अपेक्षा उपकरण-कुशलता का महत्त्व बढ़ा। औज़ारों के लिए जो विकास-क्रम लागू है, वही हथियारों के लिए भी है। ज्यों-ज्यों औज़ार और हथियार अधिक कुशल और सूक्ष्म होते गये त्यों-त्यों शरीर-बल की अपेक्षा उपकरण-कुशलता और शस्त्र-कुशलता का महत्त्व बढ़ता गया। इस विकास का तात्पर्य पुराने संस्कृत वाक्य में भलीभाँति व्यक्त किया जा सकता है 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'।

मनुष्य की प्रगति शरीर-बल से बुद्धि-बल की दिशा में होती गयी है और आज तो यह परिस्थिति है कि शरीर-बल और सत्ता-बल वैज्ञानिक उपकरणों के सामने पराधीन हो गया है। इसका अर्थ यह है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री में शरीर-बल की न्यूनता होने के कारण वह अबला 'रक्षणाकांक्षिणी' अथवा 'पराधीन' नहीं रह गयी है। शस्त्र-विद्या, अस्त्र-विद्या तथा मन्त्र विद्या का विकास जिस दिशा में हो रहा है उससे तो यह अनुमान निश्चित रूप से किया जा सकता है कि वहाँ मनोबल और बुद्धि-बल अधिक होगा वही वास्तविक शक्ति और स्वत्व होगा। विज्ञान की प्रगति ने स्त्री को पुरुष के साथ तुल्यबल बना दिया है।

सदियों से स्त्री का जीवन पुरुष निर्भर और पुरुष-सापेक्ष रहा है। इस लिए उसमें बलिदान, आत्मोत्सर्ग और क्लेश-सहन की अनुचित शक्ति होते हुए भी कुटुम्ब तथा समाज में उसकी भूमिका गौण रही। ईश्वर भक्ति और आत्मज्ञान में निमग्न पुरुषों ने उसे मोक्षमार्ग की मुख्य बाधा माना। उन्न पुरुषों ने स्त्री की चर्चा करना वैराग्यिता का लक्षण माना। विरक्त

ने उसका मूल्यांकन करना निषिद्ध समझा। विलासियों ने और कवियों ने उसे विलास और उपभोग का साधन माना। गृहस्थों ने अच्छा गृहिणी तथा कन्या के रूप में उसे देवता का पवित्र धरोहर माना। परन्तु इनमें से किसीने उसे पुरुष-स्वतन्त्र और पुरुष-निरपेक्ष मानव नहीं माना। परन्तु आज तो सामाजिक जीवन में स्त्री को लिंग-निरपेक्ष नागरिकता का अधिकार प्राप्त है। इसलिए उसे अपने स्त्रीत्व का रक्षण और विकास करते हुए पुरुष-निर्भर और पुरुष-सापेक्ष जीवन से ऊपर उठना है। समाज में स्त्री-पुरुष का सहजीवन होगा। दोनों का जीवन परस्पर पोषक और परस्पर-पूरक होगा परन्तु अब पर स्त्री का जीवन पुरुषापेक्षी तथा पुरुषावलम्बी नहीं होगा। यह तभी हो सकता है, जब स्त्री अपनी परंपरा-गत प्राप्त धारणाओं को छोड़कर 'स्व-रक्षित' हो जायगी। इसके लिए उज्ज्वल चारित्र्य की जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता पवित्र जीविका के लिए भी है। निष्कलंक चारित्र्य और शुद्ध जीविका ही स्त्री के औपचारिक नागरिकत्व को वास्तविक बना सकती है।

धार्मिक वर्ग में भी स्त्री निकृष्ट घोषित रही है। निकृष्ट-से-निकृष्ट पुरुष की अधिष्ठता उस पर आज तक रही है। इसके लिए संविधान और विधान में जो परिवर्तन आवश्यक थे उनमें से मुख्य-मुख्य परिवर्तन अन्य सभ्य राष्ट्रों की तरह आधुनिक भारत में भी किये जा चुके हैं, अन्य आवश्यक परिवर्तन होते जा रहे हैं। परन्तु संविधान और विधान से समय बदलने की शक्ति तो स्त्रियों में चारित्र्यबल और आत्मबल से ही आ सकती है। इसका संकेत विनोबा के विचारों में है। विज्ञान-युग आत्मबल का रास्ता प्रशस्त करता है। अतः वर्तमान युग स्त्री के स्वायत्त जीवन का पुरुषार्थ है।

काशी

११ १ '५८ दादा धर्माधिकारी

नया संस्करण

'स्त्री-शक्ति' के तीसरे संस्करण से इस पुस्तक के विषयों का नये सिरे से सम्पादन और वर्गीकरण कर इस प्रकरणों में इसे बाँट दिया गया है। पू. विनोबाजी के 'स्त्री-शक्ति' संबंधी प्राय सभी विचार इसमें आ जाते हैं। स्त्री-शक्ति संबंधित एक अन्य पुस्तिका 'सप्त शक्तियाँ' भी प्रकाशित हुई है।

—प्रकाशक

अनुक्रम

स्त्री-पुरुष में भेद करने की वृत्ति मुझमें नहीं है। मैं मानता हूँ कि स्त्रियों के सामाजिक, कौटुम्बिक और राजकीय अधिकार और कर्तव्य वे ही हैं जो पुरुषों के हैं। दोनों का आत्मिक अधिकार समान है और दोनों की नैतिक योग्यता भी एक है। दोनों का शिक्षण एकत्र होना चाहिए और विषय भी समान होने चाहिए। स्त्री-पुरुष का भेद बाह्य है, मूलभूत नहीं। इससे भिन्न भी एक विचारधारा है, लेकिन मैं अपने विचार रख रहा हूँ। स्त्री और पुरुष में समान मानव-आत्मा होती है, इसलिए बाह्य भेद दिखाई दें तो भी उनको महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं। बाह्य भेद के कारण दोनों के काम-क्षेत्रों में कुछ फर्क होना स्वाभाविक है, लेकिन इतने-से आधार पर उस भेद-भाव को ठीक नहीं कहा जा सकता, जो आज हम लोगों में मौजूद है।

अनर्थकारी काव्य शक्ति

हिन्दुस्तान में बीच के जमाने में कुछ विचारक ऐसे निकले, जिन्होंने स्त्री-पुरुष भेद को मूलभूत समझा। उनका आधार केवल उनकी कवित्व शक्ति है। शास्त्रों ने सृष्टि का निरीक्षण करते हुए दो तत्त्व पाये। एक विविध रूपधारी जड़, दूसरा एकरस चेतन। एक को उन्होंने नाम दिया 'प्रकृति' और दूसरे को 'पुरुष'। दोनों के संयोग से संसार चल रहा है। 'प्रकृति' शब्द स्त्रीलिंग है और 'पुरुष' पुल्लिंग। इसी व्याकरण लिंग-भेद का उपयोग कर कवियों ने कहा कि स्त्री 'प्रकृति-तत्त्व' का प्रतिनिधित्व करती है और पुरुष 'पुरुष-तत्त्व' का। कुछ विचारकों ने इसे गंभीर स्वरूप दिया और माना कि स्त्री संसारासक्त होती है, वह मोक्ष की अधिकारिणी नहीं

हो सकती। स्त्री को मोक्ष पाना है तो उसे दूसरे जन्म में पुरुष होना होगा। इन विचारकों के विचार की सिद्धि के लिए सिवा उनकी विकृत बुद्धि और कल्पना-शक्ति के और कोई आधार नहीं था। लेकिन शास्त्रों ने तो प्रकृति को 'प्रधान' भी कहा है और वह शब्द पुल्लिंग है।

वस्तुतः स्त्री-पुरुष में एक ही पुण्य तत्त्व जो चेतन है समान भाव से मौजूद है और दोनों के शरीर उसी प्रकृति-तत्त्व के बने हैं। दोनों की धर्मपरायणता और संसार-बन्धन समान है और मोक्ष का अधिकार भी दोनों का समान है। लेकिन कल्पना-शक्ति कहाँ तक अनर्थ कर सकती है इसका मैं प्रकृति शब्द का एक उदाहरण दे रहा हूँ।

संस्कृत-काव्यों में मैंने पढ़ा कि दमयन्ती के महल में वायु का भी प्रवेश नहीं था। क्यों? इसलिए कि वायु पुल्लिंग है और परपुरुष को दमयन्ती के महल में कैसे स्थान हो सकता है? जब मैंने यह पढ़ा तो मैं सोचकर व्याकुल-सा हो गया कि दमयन्ती का क्या हाल हुआ होगा। लेकिन फिर थोड़ी देर में निश्चिन्त हो गया। क्योंकि ध्यान में आया कि वहाँ 'वायु' नहीं तो 'हवा' तो जरूर जाती होगी क्योंकि हवा स्त्रीलिंग है। ऐसी है शब्दों की महिमा!

गुणों में अभेद

स्त्री संसारासक्त और पुरुष मोक्षप्रधान और विरक्त मानने वाली विचारधारा से भिन्न एक दूसरी विचारधारा भी है, जो कहती है "स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है। उसमें दया-भाव सहज ही अधिक होता है। बालकों की शिक्षा और समाज शासन स्त्री के हाथ में दिया जाय तो अहिंसक समाज-रचना सुगमता से सिद्ध होगी।" इन सब बातों में जितनी बात है उतना मैं भी चाहता हूँ। अभी तक ये कार्य सामान्यतः पुरुष ही करते आये हैं इसलिए स्त्रियों के प्रवेश से उनमें एक तरह की ताजगी आयेगी ऐसा मैं भी मानता हूँ। लेकिन जैसा कि ये विचारक मानते हैं वैसा मैं

नहीं मान सकता। क्योंकि दया आदि गुण न किसी जाति के आश्रित हैं, न किसी लिंग के। बाह्य उपाधि के कारण गुणों के प्रकाशन में उनके प्रकट होने की पद्धति में फर्क हो सकता है। लेकिन दोनों के गुणों में ही फर्क है ऐसा मानना विचार और अनुभव के भी विरुद्ध है।

ग्रहण शक्ति में अभेद

लेकिन भेद माननेवाले गुणों में तो भेद मानते ही हैं दोनों की ग्रहण-शक्ति में भी फर्क मानते हैं। कहते हैं स्त्रियों के लिए कर्तव्य अनुकूल है गणित प्रतिकूल। पुरुष में पराक्रमशीलता अधिक होती है, उसकी बुद्धि की ग्रहण-शक्ति और स्वभाव के अनुकूल उसके अध्ययन के विषय होने चाहिए। इसी प्रकार स्त्रियों में सौंदर्य भावना अथवा आदि मृदु शक्तियाँ अधिक होती हैं। वैसी ही उनकी ग्रहण-शक्ति और वैसे ही उनके अध्ययन के विषय होने चाहिए। किन्तु मैं मानता हूँ कि मूल-स्वभाव और उपाधिजन्य भेद न समझ विश्लेषण न होने के कारण पैदा हुए ये भ्रम हैं।

प्रतिष्ठा में अभेद

नयी तालीम में लड़के भी रसोई बनाना सीखते हैं। इस पर एक भाई ने आपत्ति उठायी। उनको दुःख हुआ कि लड़कों के सिखाने का समय बिगाड़कर क्या हम उन्हें चूल्हे में झोंकते हैं? उनकी राय में चूल्हे में लड़कियों को झोंकना चाहिए। क्योंकि चूल्हे में लकड़ी जल सकती है और लकड़ी तथा लड़की दोनों स्त्रीलिंग हैं। मैंने उन्हें समझाया कि चूल्हे में तो ईंधन भी जल सकता है और वह तो लड़कों के समान पुल्लिंग है। लड़कों के द्वारा भी रसोई बनाने में अग्नि को इनकार नहीं है। ज्वार की रोटी लिंग भेद नहीं जानती। स्त्री-पुरुष दोनों की भूख का समान भाव से शमन करती है। भूख भी लिंग भेद नहीं जानती। और कुछ नहीं तो

प्रतिष्ठा का ही खयाल लोग ज्यादा करते हैं। हमें समझना चाहिए कि प्रतिष्ठा न स्त्री की है न पुरुष की। प्रतिष्ठा तो उसकी है जो प्रतिष्ठा के काबिल है। प्रतिष्ठा का किसी कर्म-विशेष से भी संबंध नहीं।

साथ रहने के गुण-दोष

लड़कियों और लड़कों के साथ रहने पर भी कइयों का आक्षेप है। वे कहते हैं, यह प्रयोग खतरनाक साबित होगा। लेकिन साबित वह होगा जो हम साबित करेंगे। यह हमारी शक्ति पर निर्भर है। जैसे किन्हीं भी दो व्यक्तियों के एकत्र रहने में जैसे कुछ गुण होता है खतरा भी रहता ही है। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं क्या आप ब्राह्मण-बालक और हरिजन बालक को एक ही छात्रालय में रखेंगे? क्या ग्लानि के कारण कुछ विग्रह नहीं होगा? मैं कहता हूँ यह डर तो मुझे भी है। ब्राह्मण और हरिजन बालक को साथ रखने में यह डर जरूर है कि जो मल अभी तक ब्राह्मणों तक सीमित था वह हरिजनों में भी फैल जायगा। लेकिन जहाँ हम शिक्षण देने के लिए बैठे हैं वहाँ ऐसे खतरों को उठाना ही होगा। जहाँ खतरा नहीं वहाँ प्रयोग नहीं जहाँ प्रयोग नहीं वहाँ शिक्षण नहीं मुझे ही हिम्मत न हुई तो मैं अपनी हार मानूँगा लेकिन सिद्धान्त को कायम रखूँगा।

गुरु-मन्त्र

एक बहन ने कहा 'भगवद्गीता में तो स्त्रियों के लिए कोई शिक्षा ही नहीं दीखती। वहाँ स्थितप्रज्ञ है, गुणातीत है, योगी है। लेकिन स्थितप्रज्ञा, गुणातीता, योगिनी के लक्षण बताये ही नहीं हैं। यह बाबत शास्त्री की 'He' और 'She' वाली कानून की भाषा! मैंने उससे कहा उसकी फिक्र मत करो। गीता खुद तो स्त्री है और उसके अन्दर में मैं स्थितप्रज्ञ आदि पड़े हैं। इसे तो गुरु-मन्त्र मिला है, तत्त्वमसि। योग-

गाता, हरिजन-परिजन, हिन्दू-मुसलमान, स्त्री-पुरुष ये सब भ्रम हैं। तू इनसे भिन्न विशुद्ध केवल आत्मा है। तू शव नहीं, शिव है। तेरे मेरे वर्गभेद तो शव हैं, मुर्दा हैं। जिन्दा तो एक आत्मतत्त्व ही है। उसे पहचान और इस भूल को। भेदों में अभेद पहचानना ही आत्म-बुद्धि का लक्षण है। भेदों को बढ़ाना ही हीन-बुद्धि का लक्षण है, पुरुषार्थ हीनता है।"

'महिला-आश्रम पत्रिका'
नवम्बर ५८

समता के साथ विवेक हो

समता का सिद्धान्त हर युग पर लागू है, किन्तु किसी जमाने में समता के लिए जमीन के बँटवारे की जरूरत नहीं थी, जैसी आज है। किसी जमाने में वोट के हक की जरूरत नहीं थी, लेकिन आज है। आज वोट सबको मिलना चाहिए, ऐसी भावना और जागृति हुई है। हम हिन्दुस्तान में स्त्री-पुरुष को समान मानते हैं, उनमें कोई भेद नहीं मानते। इसलिए स्त्रियों को वोट का अधिकार मिल गया। पर आज भी कई पश्चिमी देशों में स्त्री को वोट का हक नहीं है और वहाँ की स्त्रियों को उसकी आकांक्षा भी नहीं है। वे कहती हैं कि यह तो पुरुषों का काम है, वे ही करें। लेकिन हमारे देश में ऐसी बात नहीं, क्योंकि यहाँ स्त्री-पुरुष में समता प्राचीन काल से धर्म-तत्त्व-विचार में तो मानी गयी है, यद्यपि आचार में अभी भी नहीं मानी गयी है और उसमें सुधार की जरूरत है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों को मोक्ष का समान अधिकार है। दोनों की आध्यात्मिक योग्यता समान है। हम सिर्फ राम या कृष्ण का नाम नहीं लेते, 'सीताराम' और 'राधाकृष्ण'

का देते हैं। ब्रह्मविद्या में हम जितना आगे बढ़े हैं उतना दुनिया में कोई नहीं बढ़ा है। हम सीताराम इसलिए कहते हैं कि स्त्री-पुरुष की समता को मानते हैं यद्यपि ईश्वर एक ही है इस मूल तत्त्व को हम जानते हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान में स्त्रियों को वोट का हक हासिल करने के लिए आन्दोलन नहीं करना पड़ा। इंग्लैंड में पचास साल तक स्त्रियों को वैसा आन्दोलन करना पड़ा और आज जिस तरह गरीब-विरुद्ध-अमीर का सवाल खड़ा है वैसा ही स्त्रियों स्त्री-विरुद्ध-पुरुष ऐसा सवाल खड़ा करना पड़ा। किन्तु यहाँ की स्त्रियों को इसकी आवश्यकता नहीं रही क्योंकि यहाँ की हवा में आध्यात्मिक और मानसिक अधिकार समान होने की बात प्राचीन काल से है। हिन्दुस्तान जैसे देश में इस तरह की समता का विचार प्राचीन काल से चला आ रहा है।

समता की प्रवृत्ति के साथ-साथ विवेक-बुद्धि भी रहनी चाहिए। हिन्दुस्तान के बाहर लोग समता की बात करते हैं, किन्तु वहाँ अविवेक से काम लिया जाता है। उन्होंने शस्त्र और हिंसा से समता लाने की जो बात की है वह विवेकशून्य है। वह कोई समता नहीं। वे तो समता के नाम पर सबको एक ढाँचे में डालना चाहते हैं। हम इस तरह सबको एक ढाँचे में डालना कभी पसंद नहीं करते। हम अन्दर की समता को मानते हैं और पेट के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी ही समता चाहते हैं। माँ बच्चों को खिलाती है, तो छोटे बच्चे को दूध देती है उससे जो बड़ा होता है, उसे कम दूध देती है और बड़े बच्चे को सिर्फ रोटी खिलाती है। गणित के हिसाब से सब बच्चों को समान दूध और समान रोटी नहीं देती। हमारी समता भी ऐसी ही विवेकयुक्त है। घर के समान समाज में जितने लोग हैं उनकी भूख और दशेन्द्रियों की शक्ति के अनुसार उनको खाना देंगे। जिसे दूध की आवश्यकता होगी उसे दूध देंगे और जिसे रोटी की जरूरत होगी उसे रोटी देंगे। ऐसा विवेक न रखते हुए समता लायी गयी तो वह निकम्मी होगी। इसलिए

हिंसा के जरिये समता विवशपूर्ण हो जाती है। हम तो आध्यात्मिक समता चाहते हैं यही सनातन धर्म विचार है।

कोदरमा
२७-११ ५१

सर्वत्र एक समान स्त्री-शक्ति

समझने की बात है कि भारत की पूरी जनता में एक समान स्त्री शक्ति है। स्त्रियों में तो वह शक्ति है ही। कई लोगों को शंका है कि स्त्रियों में कोई शक्ति है भी या नहीं? लेकिन स्त्रियों में तो वह शक्ति है ही। साथ ही यहाँ के पुरुषों में भी वह स्त्री-शक्ति पड़ी हुई है। यह एक विचित्र बात मैं कह रहा हूँ। बहुत से लोग कहते हैं कि स्त्री तो अबला है रक्षण-योग्य है। स्त्री को कोई शक्ति होती होगी तो भी उसका रक्षण करना ही होता है। अपने यहाँ स्त्रियों को अबला बाद में कहने लगे। स्त्रियों का मूल नाम तो महिला है। महिला यानी महान् शक्तिशाली।

अपने यहाँ शक्तिरूप में स्त्री-मूर्ति ही मान्य हुई है पुरुष-मूर्ति नहीं। महिषासुर-मर्दन का जब प्रसंग आया और जब महिषासुर देवों और मनुष्यों को सताने लगा तब उससे किस तरह मुक्ति मिले यह सवाल पैदा हुआ। सभी देव विष्णु के पास इकट्ठा हुए और आखिरकार सभी ने एकत्र होकर शक्तिमाता के पास जाकर प्रार्थना की कि महिषासुर से हमारा छुटकारा कीजिये। तब माता ने कहा कि तुम सबके पास जो भी शस्त्र हो वह मेरे सुपुर्द करो तो विष्णु ने अपना शस्त्र दे दिया शंकर ने अपना शस्त्र दे दिया यानी जिसके पास जो कुछ था वह सब शक्ति के सुपुर्द किया गया और तब उस शक्ति ने महिषासुर का मर्दन किया। यह कहानी पुराने ग्रन्थों में आती है। इसलिए शक्तिरूप में हिन्दुस्तान में स्त्री-मूर्ति ही मान्य है।

गुरु-सेवा भी निःस्वार्थ करें

गुरु का संपर्क स्वार्थ के लिए नहीं अनुभव के लिए है। गुरु के पास ज्ञान के लिए जाना है ऐसी भावना रखेंगे तो सौदा होगा। गुरु-सेवा के लिए गुरु के पास जाना चाहिए। निःस्वार्थ भाव से सेवा करनी चाहिए। निःस्वार्थ भाव से दोनों को अपना-अपना कर्तव्य करना चाहिए। गुरु को सोचना चाहिए कि मेरे पास मेरा कुछ भी नहीं रहना चाहिए। जो कुछ ज्ञान है वह सब शिष्य को देकर उसे स्वतंत्र विचार करने लायक बनाना चाहिए। शिष्य को सोचना चाहिए कि मेरा स्वतंत्र व्यक्तित्व ही न रहे, सब कुछ मुझमें विलीन हो जाय। अपने अंत-काल के समय भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा। सच्चा गुरु तो वह होगा जो अपनी अतर्ज्योति के समान काम करता है। मेरे या मेरे उपदेश पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं।

पूर्व-जन्म के सुकृत के कारण हरि-कृपा हो गयी तो बेड़ा पार है। हमारे संतों ने बहुत बड़ा काम किया है। जो वेदादि बड़े-बड़े ग्रन्थों में भरा पड़ा है उसे उन्होंने लोकभाषा में लाया है। माय दूध पास लाती है, पचाती है और बच्चे को दूध पिलाती है। माय का काम संतों ने किया है।

आजकल मैं 'कुरान शरीफ' से कुछ सार-संग्रह करने का काम कर रहा हूँ। कल्पना यह है कि संपूर्ण कुरान-शरीफ' का अध्ययन करने के लिए हमें जितना समय देना पड़ता है उससे कम समय हमारे बच्चों को लगे। उनकी शक्ति कम खर्च हो और नाहक बोझ सिर पर उठाना न पड़े।

दुनियाभर के ज्ञान का परिग्रह गलत

'बहुश्रुत' होना यह (अपने-आपमें) धर्म नहीं है। तुम्हारा धर्म तो आत्मज्ञान प्राप्त करने का होना चाहिए। 'बहुश्रुत' उसमें मदद कम

होना यह ठीक है। कभी-कभी दवा की मात्रक मात्रा कम जाती है, पथ्यों की भी आवश्यकता हो जाती है। आत्मज्ञान की जरूरत है, तो सबको ही करनी चाहिए। मुख्य बात यह है कि चित्त-शुद्धि होनी चाहिए। चित्त का मल धुल जाना चाहिए। वैद्य की किताब में हजारों किस्म की दवाएँ होती हैं पर हम जिस दवा की जरूरत होती है, वही लेते हैं। इसी तरह चित्त में आलस्य, मत्सर या अन्य कोई दोष होने पर उसे दूर करने के लिए जो साधना जरूरी हो, वह करें। उसके लिए योग्य गुरु चाहिए। सत्संग से दोषों का क्षय होता है। तुम्हें नदी पार करनी है। चार-पाँच नौकाएँ सामने हैं। क्या सब पर सवार होगे? एक में चढ़कर ही पार करोगे न? वैसे ही कोई भी एक किताब ऐसी हो सकती है, जिससे तुम्हें सब कुछ मिल सकता है।

मन में यह रखने की जरूरत नहीं कि मैंने यह नहीं पढ़ा, वह नहीं पढ़ा। इससे मनुष्य नाहक पराधीन हो जाता है। हम अज्ञानी हैं, यह मानना ही एक बहुत बड़ा अज्ञान है। हमें जितनी जरूरत है, उतना ज्ञान है। मुझे चित्र बनाना नहीं आता, संगीत नहीं आता, यों कहकर मैं रोता बैठूँ, तो कैसे चलेगा? मुझे जो चीजें नहीं आतीं, उनकी फेहरिस्त बनाने बैठूँ तो लोग तो मुझे ज्ञानी मानते हैं, लेकिन मैं 'अज्ञानी' ही साबित होऊँगा! जैसे दुनियाभर के पैसे का संग्रह नष्ट है, वैसे ही दुनियाभर के ज्ञान का परिग्रह भी नष्ट है।

तीन आवश्यक ज्ञान

हर चीज के ज्ञान के पीछे दौड़ने के बजाय हम ऐसा मानें कि हम सब एक हैं। तुम्हारे पास ५ रु० हैं, तो मेरे पास अलग से ५ रु० की जरूरत नहीं। जो चीज तेरे पास है, वह मेरे पास है ही। हम सब एक नाव पर चढ़ रहे हैं। उसमें कोई एक विषय में प्रवीण है, कोई दूसरे। उसमें भिन्नता नहीं है। हाँ, कुछ चीजें ऐसी हैं, जिनका ज्ञान

सबको होना चाहिए जैसे मुझे आरोग्य ज्ञान है और तुम्हें नहीं है, तो मैं तन्दुरुस्त रहूँगा और तुम बीमार पड़ोगे। नाराज तुम्हें भी आरोग्य ज्ञान की जरूरत है। वैसे सम्यग्-ज्ञान सबको होना चाहिए यह जरूरी नहीं है। जैसे ही मुझे बढ़ई का काम आता है और तुझे बुनकर का काम आता है। मुझे वह नहीं आता और तुझे वह नहीं आता तो भी दोनों का चल सकता है। इसका नाम है वर्णधर्म। कोई बढ़ई का काम करके समाज की सेवा करता है, कोई खेती से तो कोई संगीत से।

आत्मज्ञान ही सही 'ज्ञान' है जिसकी सबको जरूरत है। जैसे आजकल लड़कियाँ काफी पढ़ती हैं नौकरियाँ करती हैं पर मुख्य तीन प्रकार का ज्ञान हरएक को होना चाहिए (१) आरोग्य-ज्ञान (२) नीतिज्ञान और (३) आत्मज्ञान।

इन दिनों लोग कहते हैं कि बहनों को आगे आना चाहिए। लेकिन मैं दूसरे अर्थ में कहता हूँ। बहनें फौज में दफ्तर में सरकार में जायें इससे मेरा समाधान नहीं होता। मैं चाहता हूँ कि बहनों को आत्मज्ञानी बनना चाहिए।

कुछ लोग मुझसे कहते हैं आप इन दिनों बहनों को ही ब्रह्मविद्या की ज्ञाता बनाना चाहते हैं ऐसा क्यों? मैंने कई बार इस पर कहा है। अभी तक बहनों को बाहर आने नहीं देते थे। बहनों को गृहस्थधर्म ही करना चाहिए, ऐसी भावना आज तक थी। पुरुषों ने विषयासक्ति का साधन बहनों को बनाया है और वैराग्य का साधन भी उसीको माना है। कई बड़े-बड़े मुनि या स्वामी के बारे में सुनने में आता है कि वह 'स्त्री' का मुख देखते नहीं हैं। यह सारा संसार ही स्त्री के इर्द-गिर्द इस तरह खड़ा कर दिया है। इसलिए जब 'स्त्री' ही वैराग्यवान्, ब्रह्मचारिणी संन्यासिनी बनेगी तो यह सब नहीं होगा। पर ऐसी स्त्री शंकराचार्य के समान प्रखर वैराग्यवान् होनी चाहिए।

मार्च ६१

सामाजिक समता

२

अभेद कैसे लायें ?

स्त्री और पुरुष में जो भेद है, उसे तो दुनिया जानती है। उसे मिटाने की न किसीकी इच्छा है, न शक्ति। लेकिन उस बाह्य भेद का स्वरूप लोगों में जिस तरह का हो गया है वैसा नहीं है। केवल एक दृष्टि की भोग्यतापर है। उसके मूल में एक पवित्र भावना है। संतान पैदा करने का वह एक साधनमात्र है। लेकिन इस विषय का मनुष्य ने अत्यन्त दुरुपयोग किया है। वास्तव में वह एक शास्त्रीय वस्तु है, लेकिन आज शर्म का विषय बन गया है। उस विषय में खुले तौर पर बातचीत तक नहीं हो सकती। प्रश्न जब शास्त्रीय बनेगा तभी इस विषय की सारी गलत धारणाएँ दूर हो सकेंगी। आज जैसा इस विषय का दुरुपयोग हो रहा है वैसा तब नहीं होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि इस बाह्य भेद को तो हमें भूल ही जाना चाहिए। मानव-दृष्टि से आंतरिक अभेद की बुनियाद पर ही हमें अपने जीवन की रचना करनी चाहिए।

शिक्षण में अभेद

लोग पूछते हैं कि 'तब क्या स्त्री और पुरुष के शिक्षण में आप कुछ भी भेद नहीं करेंगे?' मैं कहता हूँ जो भेद तो पुरुषों के शिक्षण में भी होगा। पुरुष-पुरुष में भी योग्यता भेद होता है और उसके अनुसार विविध प्रकार का विशेष शिक्षण दिया ही जाता है। लेकिन सर्वसामान्य शिक्षण-दृष्टि में उससे फर्क नहीं पड़ता। वैसे ही स्त्रियों के बारे में समझना चाहिए। एक बहन ने पूछा था: 'क्या बाल-संगोपन स्त्रियों के शिक्षण का खास विषय नहीं है?' है, लेकिन

उसका अर्थ यह नहीं कि पुरुषों के विषय में बाल-संगोपन की जरूरत नहीं। संतान तो पिता और माता दोनों की है। इसलिए दोनों को बाल-संगोपन का ज्ञान जरूर होना चाहिए। हाँ माता को विशेष होना चाहिए, इतना माना जा सकता है।

दृष्टि में आमूल परिवर्तन आवश्यक

लेकिन यह तो बहुत ही स्थूल भेद हुआ। मुख्य वस्तु तो यह है कि स्त्री-पुरुष के संबंध की तरफ देखने की हमारी आज की दृष्टि में आमूलाग्र परिवर्तन की आवश्यकता है।

एक मिसाल लीजिये। रामायण में हम पढ़ते हैं कि सीता के आभूषण पहचानने के लिए लक्ष्मण के सामने रखे गये तो लक्ष्मण बोले

> नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
> नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

क्या हम इसका स्थूल अर्थ ही करेंगे और उस रूप को आदर्श मानेंगे? स्थूल अर्थ तो यह हुआ कि जिसको पवित्र भावना है, उसे किसी स्त्री के चेहरे की ओर देखना ही नहीं चाहिए।

अगर वाल्मीकि का यही अर्थ है तो मैं कहूँगा कि यह उत्तम नहीं बहुत ही नीच आदर्श है। लेकिन मैं जानता हूँ कि वाल्मीकि को यह अर्थ अभिप्रेत नहीं रहा। चरण-वंदना की बात का जिक्र करके लक्ष्मण ने केवल अपनी नम्र भावना ही प्रकट की है। कारण जब हम किसी देवता का ध्यान करते हैं तो अक्सर उसके चरणों का ध्यान करते हैं। राम के गहने पहचानने की बात होती तो लक्ष्मण यही उत्तर देता क्योंकि रामके भी उसकी यही भावना थी।

वास्तव में सौन्दर्य के दर्शन से बुद्धि पवित्र होनी चाहिए, न कि मलिन। सूर्योदय के दर्शन से बहती नदी के निर्मल जल के दर्शन से बुद्धि

पावन होती है। जहाँ सौन्दर्य के दर्शन से बुद्धि मलिन हो वहाँ समझें कि विकृति बुद्धि का लक्षण प्रकट हो रहा है।

पवित्रता आन्तरिक वस्तु

हमारे यहाँ तो स्त्री-पुरुष के साथ रहने के बारे में भी काफी सवाल उठते हैं। वातावरण पवित्र कैसे रहेगा—यही सबमें फिक्र होती है। पवित्रता की फिक्र तो मुझे भी है। जितनी आप हैं उससे सहस्रगुनी पवित्रता मैं चाहता हूँ। क्योंकि जानता हूँ कि आज जो पवित्रता हममें है वह ऊपर-ऊपर की है। मैं यह नहीं कहता कि समाज ने पवित्रता का कुछ भी रक्षण नहीं किया है। कुछ किया है, परन्तु दीवारें खड़ी करके। इससे तो पवित्रता का बहुत-सा आभास-मात्र निर्माण हो सकता है।

पवित्रता तो आन्तरिक वस्तु है। मैं तो मानता हूँ कि स्त्री-पुरुषों के एकत्र रहने से पवित्र बनने में मदद मिलनी चाहिए। लेकिन आज का वातावरण इसके विपरीत है। उसका कारण है हमारा साहित्य। मैं केवल अर्वाचीन साहित्य की बात नहीं कर रहा हूँ। वह तो शायद उसका परिणाम है। प्राचीन साहित्य जिसमें धार्मिक माने गये साहित्य का भी मैं समावेश करता हूँ उसके लिए जिम्मेदार है। साहित्य की वृत्ति ही कलुषित हो गयी है। उसे हमें फेंक देना होगा। वृत्ति में बदल डालना होगा। वृत्ति शुद्ध करनी होगी।

संस्कृत कवियों ने स्त्री को 'भीरु' कहा है। भीरु यानी 'पाप-भीरु' होता तो वह एक उत्तम विशेषण होता। लेकिन भीरु यानी 'कायर' का विशेषण उन्होंने प्रशंसा के रूप में स्त्रियों को पेश किया है। लेखकों ने भले ही प्रशंसा के रूप में दिया हो परन्तु स्त्रियों ने स्वीकार क्यों किया? उसने स्वीकार किया है इतना ही नहीं सहर्ष स्वीकार किया है। आप कहेंगे कि यह सब पुरुषों ने किया है। तब तो वह चेतन की

मान आप मानते हैं, यही अर्थ होगा। क्या सचमुच पुरुष चेतन और स्त्री जड़ है? तब तो जड़ों की तरह वह उसे जैसा रखे वैसी रहेगी।

स्त्री की जिम्मेदारी

मैंने शुरू में ही मान लिया कि स्त्री की दुर्दशा का बहुत सारा जिम्मा पुरुषों पर है। मैं तो पुरुष के नाते सारा-का-सारा जिम्मा उठाने की इच्छा करूँगा। लेकिन इच्छा करने पर भी वह हो नहीं सकेगा। क्योंकि दो चेतन वस्तुओं में होनेवाले परिणामों का जिम्मा केवल एक पर ही नहीं डाला जा सकता। मैं अगर स्त्री होता, तो सहसा सब पुरुषों को मुक्त कर देता। कहता कि यह सारी जिम्मेवारी मेरी है। अगर मैं जड़ होता, स्त्री या पुरुष की तरह चेतन न होता, तो चुप रहता। पर चूँकि चेतन हूँ, इसलिए अपनी सारी-की-सारी जिम्मेवारी दूसरों पर डालना कैसे पसंद करूँगा?

क्रान्तिकारी वृत्ति जागे

अगर मैं स्त्री होता, तो न जाने कितनी बगावत करता। मैं तो चाहता हूँ कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो। लेकिन बगावत तो वह स्त्री करेगी, जो वैराग्य की मूर्ति होगी। वैराग्य-वृत्ति प्रकट होगी, तभी तो मातृत्व भी सिद्ध होगा। इसलिए मैं मानता हूँ कि स्त्रियों में कोई शंकराचार्य जैसी तेजस्वी स्त्री प्रकट होगी, तभी उनका उद्धार होगा। स्त्रियाँ स्वतन्त्रता चाहती हैं, तो उन्हें वासना के बहाव में बहना नहीं चाहिए।

मैं देहात की स्त्री को शहर की स्त्रियों की तुलना में ज्यादा स्वतंत्र समझता हूँ। वे अपने दुर्व्यसनी पति के मुँह पर तमाचा भी जड़ देती हैं, ऐसा भी उदाहरण मैंने देखा है। पढ़ी-लिखी स्त्री का वह नहीं निस्तार का। पढ़ी-लिखी स्त्रियों को तो मैं अधिक दबी पाता हूँ। इसलिए नहीं

कि वे पढ़ी-लिखी होती हैं बल्कि वे आरामतलब होती हैं। बंदर का पैर आरामतलब नहीं होता इसलिए स्वतंत्र रहता है।

बगावत करने की वृत्ति और विनयशीलता में कोई विरोध नहीं है। विनयशीलता से तो बगावत बलवान् बनती है। समझ-बूझकर और उचित समझकर किसी उचित आज्ञा को मानना विनयशीलता है, अनुचित आज्ञा को न मानना बगावत है और विनयपूर्वक यह हो सकती है। इसीमें स्वतंत्रता है।

दोनों एक-दूसरे के पूरक बनें

स्त्री और पुरुष को [illegible] बताते हुए अन्ध-पंगु का दृष्टान्त दिया जाता है। किन्तु दृष्टान्त तो इससे उल्टा भी दिया जा सकता है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के रक्षक भी बन सकते हैं। स्त्री पुरुष को बचावे पुरुष स्त्री को। आवश्यक है कि स्त्री पुरुष दोनों अपनी-अपनी कमियों की पूर्ति करते हुए परिपूर्ण स्त्री-पुरुष बनें। मानो पुरुष को स्त्री बनना होगा स्त्री को पुरुष और दोनों को परिपूर्ण।

परिपूर्ण बनने की पद्धति ही ऐसी है। उसमें पुरुष को स्त्री बनना पड़ता है और स्त्री को पुरुष। मजदूर को शिक्षित होना होता है, शिक्षित को मजदूर। हमारे यहाँ विद्वान् को रसोईघर में काम करते देखकर कुछ लोग कहने लगे हैं "ऐसे विद्वान् को आप रसोई के काम में क्यों भेजते हैं?" मैंने कहा है "भाई मैं क्या करूँ? यह विद्वान् तो है, फिर भी इसे भूख लगती है। नहीं तो मैं इसे रसोई में न भेजता। स्त्रियों को तो रसोई आती है। जिन्हें नहीं आती उन्हें दूसरा अभ्यास करना चाहिए। परिपूर्णता की यही प्रक्रिया है।"

अहिंसा के अग्रदूत बनें

इसलिए जब बहनें मुझसे पूछती हैं कि "हम अपना रक्षण कैसे करें?" तो मैं कहता हूँ "इसमें आपको कुछ सोचना ही नहीं है। इस

स्त्री और पुरुष में फर्क नहीं करता है, दोनों को परिपूर्ण बनाता है। इस लिए अपने हृदय में ऐसी श्रद्धा रखें कि जैसे पुरुष अपनी रक्षा करने में सहज ही समर्थ माना जाता है यद्यपि कई बार वैसा वह कर नहीं पाता वैसे ही हम भी अपना रक्षण स्वयं कर सकती हैं।" तब बहनें कहती हैं कि 'पुरुषों के पास तो तलवार होती है?' तो मैं कहता हूं : "अगर यही आपकी कमी है तो आप भी तलवार रख सकती हैं। जो हक पुरुषों को है वह आपको भी होना ही चाहिए। लेकिन हर हालत में आपको निर्भय बनना ही होगा। मुझे विश्वास नहीं है कि तलवार से निर्भयता आ सकती है। निर्भय आदमी के हाथ में तलवार भी काम दे जाय यह दूसरी बात है। लेकिन जिनका विश्वास है कि पुरुष हो या स्त्री हाथ में तलवार लेकर अपना शूर बतायें—और अगर वे समझते हैं कि तलवार के आधार पर ही समाज की रचना होनी चाहिए—तो फिर स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह क्षेत्र खुला रखना चाहिए, जैसे कि पश्चिम में है। अहिंसा का प्रयोग करने में स्त्रियां अग्रसर हो सकती हैं। लेकिन वैसा करने में अगर वे अपने को असमर्थ पायें तो दोनों में हमें फर्क तो करना ही नहीं चाहिए।

भाषा सुधारिये

मैं तो स्त्री और पुरुष की भाषा में भी फर्क करना नहीं चाहता। हिंदी मराठी आदि भाषाओं में यह एक व्यर्थ का भेद पड़ गया है। हर वाक्य में बताने जाते हैं कि मैं पुरुष हूं मैं पुरुष हूं मैं पुरुष हूं। मैं स्त्री हूं मैं स्त्री हूं मैं स्त्री हूं। दोनों में अगर जाने की क्रिया ही है तो वह तो समान ही है परन्तु वह कहेगा मैं गया—वह कहेगी मैं गयी। इसकी जरूरत क्या है? जीवन में आयी हुई दुर्बलता का ही यह लक्षण मानना चाहिए। जैसे भी हो हमें इस भाषा में भी सुधार करना होगा। यह मैं हवा की बात नहीं कर रहा हूं। यह जमीन की बात है। जहां स्त्री-पुरुष

बराबरी से बात करते हैं । यहाँ तक भाषा में लिंग-भेद होते हुए भी वे उठ जाते हैं । जैसे मराठी में स्त्री भी पुरुष के समान 'मी जात आहे' (मैं जा रही हूँ) कहती है ।

अन्त में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि हरएक बहन को आत्मनिष्ठ होना चाहिए । मुझे तो 'निर्भय' शब्द भी उतना पसन्द नहीं है । उसमें भी मुझे 'भय' की बू आती है । भय से अपरिचित बालक निर्भय शब्द को नहीं समझेगा । इसलिए मैंने 'आत्मनिष्ठ' शब्द का प्रयोग किया । आप लोगों में आत्मनिष्ठा बढ़े यही मेरी भावना है । यह फलनेवाली है ऐसी श्रद्धा रखना मुझे प्रिय लगता है ।

'महिला-आश्रम' पत्रिका
नवम्बर '३६

स्त्री को पुरुष लूटते हैं

वर्धा में हमारे लोग सफाई करने जाते हैं । उनसे मुझे मालूम हुआ है कि यहाँ पाखाना-सफाई का काम भी मुख्य काम है मेहतरानियों को ही करना पड़ता है । वे पाखानों में से बिना अच्छे साधनों के मैला अपने ही अपने हाथों से निकालना पड़ता है । वे ही उसे सिर पर ढोती हैं और कुंड में भरकर गाड़ियों में ले जाकर डालती हैं । मेहतर लोग सिर्फ गाड़ियाँ हाँक कर जाते हैं । मानो यहाँ के पुरुष स्त्रियों को लूटते हैं ।

पुरुष अपनी हतक क्यों समझें ?

स्त्रियों के लिए कोई काम करने में हम पुरुष अपनी हतक समझते हैं । व्याकरण के अनुसार पुल्लिंग में हो सकती है ऐसा एक भी आदमी अपनी धोती आप नहीं धोता । बाप के कपड़े लड़की धोती है और भाई के कपड़े बहन को धोने पड़ते हैं । माँ की साड़ी धोने में भी हमें शर्म आती है तो पत्नी की साड़ी धोने की बात ही क्या ? अगर विरुद्ध प्रसंग का

पुराने जमाने में किस तरह स्त्रियों पर हमले किये गये ? द्रौपदी पर हमला किया गया। सीता को रावण उठाकर ले गया। आगे हमने स्त्री को स्वातंत्र्य नहीं दिया। जहाँ तक हो सका सुरक्षित रखा। अगर सुरक्षित न रख सके तो हम लज्जित हुए। लेकिन उन्हें स्वरक्षित नहीं बनाया। यह भेद हमें मिटाना है।

मणिपुरा (महर्षा)
१७-१२-'५१

'महिला' से 'अबला'

इस सम्मेलन में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम दिखाई दे रही है। ऐसा भेद क्यों ? भगवान् ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम पैदा नहीं किया है। लेकिन आज सारी योजना पुरुषों के हाथ में है, इसलिए स्त्रियों को थोड़ा-सा स्थान दिया जाता है। कहते हैं कि हर कमेटी में एक-आध स्त्री होनी चाहिए। जिस तरह अल्पमत का प्रतिनिधि होना चाहिए, वैसे ही स्त्रियों का भी प्रतिनिधि होना चाहिए। परन्तु अभी भी स्त्रियाँ खड़ी नहीं हो रही हैं। क्योंकि उन्हें वही तालीम दी जा रही है, जिस तालीम से पुरुषों के दिमाग बिगाड़ दिये हैं। स्त्रियों के विषय में आध्यात्मिक ज्ञान होना चाहिए। लेकिन आज वह नहीं होता है। इस हालत में दुनिया को कौन बचायेगा ? भारत की शक्ति माताओं को आगे लाना है। 'महिला' जैसा शब्द भी क्या किसी भाषा में है, जिसमें स्त्रियों की महिमा बतायी गयी हो ? 'महिला' शब्द ही महानता का सूचक है। लेकिन बीच में एक जमाना आया जब कि स्त्रियों को 'अबला' कहा गया। 'महिला' गयी और 'अबला' आयी।

पंढरपुर
११-५-'५८

पर्दा रखना कौन-सी अक्ल की बात है ?

मैं दक्षिण तेलंगाना में घूमता था तो सभा में जितने पुरुष आते थे उतनी ही स्त्रियाँ भी आती थीं। वहाँ की स्त्रियाँ तो निर्भयता से सभा में खड़ी होकर मुझसे सवाल पूछती थीं। लेकिन यहाँ तो मुसलमानों का राज रहा इसलिए मुसलमान राजाओं को खुश करने के लिए हिन्दुओं ने भी उनके पर्दे के रिवाज को अपना लिया। दूसरों के अच्छे रिवाज लेने में कोई दुर्ज नहीं है। लेकिन पर्दे का रिवाज तो बहुत ही बुरा है। बहुओं को पर्दे में रखना कौन-सी अक्ल की बात है ? अगर अब समाज इसी तरह चलेगा तो यह आजादी टिकनेवाली नहीं है।

मुसलमानों को भी पर्दा छोड़ना होगा

मुसलमानों को भी अब पर्दा छोड़ना पड़ेगा। मैंने अजमेर में दरगाह शरीफ में मुसलमानों की सभा में कहा था कि यहाँ पर भी कोई स्त्री दिखाई नहीं देती। अल्लाह की मसजिद में भी स्त्री-पुरुष का भेद क्यों ? आपको पर्दा छोड़ना ही पड़ेगा। जिस समाज में स्त्रियाँ पर्दे में रहेंगी वह समाज कभी प्रगति नहीं कर सकेगा। उन्होंने मेरा कथन प्रेम से सुन लिया क्योंकि यह सत्य विचार है।

स्त्रियों का पुरुषीकरण खतरनाक

आज पुरुषों ने समाज का जो कारोबार चला रखा है, वह ठीक से नहीं चल रहा है। आजकल तो पुरुषों को अहिंसा सिखाने के बदले समानता के नाम पर स्त्रियों को ही पल्टनें बनायी जा रही हैं यानी स्त्रियों का पुरुषीकरण चल रहा है। पुरुषों ने जो संहार मचा रखा है उसमें अब स्त्रियाँ भी योग देने लगेंगी तब फिर विश्व को कौन बचायेगा ? समुद्र अगर गंगा को स्थान नहीं देता तो वह किसके पास जायगी ? समुद्र की रक्षण-शक्ति जिन स्त्रियों के पास है वे ही अब कन्धों पर बन्दूक धरने

बचेगी तब संसार को कौन बचायेगा ? इसलिए स्त्रियों का चाहिए कि वे पुरुषों को मर्यादित बनाने का प्रयत्न करें। पुरुष शस्त्रनिष्ठ बनते हैं तो स्त्रियाँ भी शस्त्रनिष्ठ बनें, इसमें कोई सार नहीं है। स्त्रियों को अहिंसा शक्ति प्रकट करके संसार को बचाने का पराक्रम करना चाहिए।

स्त्रियाँ स्वरक्षित बनें

स्त्रियाँ सुरक्षित नहीं, स्व-रक्षित होनी चाहिए। छोटे बच्चों का सुरक्षित रहना ठीक है, पर स्त्रियों को पुरुषों की तरह स्व-रक्षित होना चाहिए। यह कहना मिथ्या है कि स्त्रियों में रक्षण-सामर्थ्य नहीं है। विज्ञान का कहना है कि स्त्रियों का शरीर पुरुषों के शरीर से अधिक रक्षण-समर्थ है। बीमार की सेवा-शुश्रूषा में अगर पुरुष को दो-तीन महीने जागना पड़े तो वह स्वयं बीमार पड़ जाता है। किन्तु स्त्रियाँ यह सब करके और घर के काम करके भी टिकती हैं। मतलब यह है कि उनके शरीर में [illegible]-टिकाव ज्यादा है।

हिरापुर (मंबई-राज्य)
[illegible]

क्या अब भी बहनें अन्दर रहेंगी ?

दूसरे देशों में बहनें और भाई साथ-साथ काम करते हैं। अगर वे साथ काम न करें, तो भाइयों की ताकत आधी रह जायगी। इस तरह आधी ताकत से क्या सब काम चल सकता है ? अब तो इस्लाम मिस्र आदि देशों में भी पर्दा हट रहा है। सारी बहनें बाहर आकर काम करती हैं। आपको मालूम ही है कि इस समय भारत की प्रधान कौन है ? इन्दिराजी जहाँ प्रधान हैं वहाँ क्या बहनें अन्दर ही रहेंगी ?

आप बहनों को नाटक सिनेमा आदि में साथ ले जाते हैं। लेकिन बाबा का प्रवचन सुनने के लिए साथ नहीं लाते। इसमें कौन-सी समझदारी

की बात है ? नाटक सिनेमा में साथ न ले जायें यह तो समझ में आ सकता है ? पर ज्ञान की बातें सुनने के लिए साथ न जायें यह कैसे समझ में आ सकता है ? आप अब अपने घर की बहनों को आगे आने दीजिए। आपके दायें हाथ की ओर कश्मीर है। हम अभी वहाँ होकर आये हैं। कश्मीर में हमने दो नाम सुने (१) लल्ला और (२) हब्बा। लल्ला नाम की एक महान् स्त्री ७ साल पहले हुई। वह शैव-धर्म को माननेवाली हिन्दू स्त्री थी। उसके बनाये हुए जो भजन लिखे उन भजनों को आज हिन्दू, मुसलमान आदि सभी प्रेम से गाते हैं। दूसरी ओर आपके दायें हाथ की तरफ राजस्थान है। राजस्थान में मीरा का नाम चलता है। मीरा के भजन भी घर घर में गाये जाते हैं। आप राजस्थान और कश्मीर के बीच में है। क्या यहाँ की बहनें भक्ति और ज्ञान में पीछे रहेंगी ?
समरोह (पंजाब)
२१ ११ '५९

स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार

क्या बहन-भाई को कम-ज्यादा मोक्ष मिलना चाहिए ? राम ने जो प्रेम भरत पर किया वही प्रेम शबरी पर भी किया। पर आज समाज की हालत यह है कि कन्या पैदा होती है तो कुटुम्बी-जन दु खी होते हैं चेहरा उतर जाता है। हम कहते हैं आपकी माँ भी तो कन्या ही थी। अगर सब लड़के ही लड़के पैदा हों कन्या न हो तो क्या आप पसन्द करेंगे ? यदि नहीं माँ की और पिता की कीमत समान है तो लड़के की कीमत अधिक और लड़की की कीमत कम क्या ? लड़के के हाथ में जायदाद होती है वह तालीम पाता है, पर लड़की को जायदाद का हक नहीं और वह तालीम भी नहीं पा सकती। कहा जाता है कि पिता के घर में उसे हक है ही नहीं। जब वह पति के घर जायेगी तो उसे हक मिलेगा ! अगर लड़की पति के घर न जानेवाली हो तो पिता की कृपा पर उसका नसीब निर्भर है।

आजकल तो यहाँ तक कहा जाता है कि भाई-बहन को हक दिया जायगा तो उन दोनों के बीच का प्रेम-भाव घट जायगा। जब भाई को हक देते हैं तो भाई-भाई के बीच का प्रेम भी खतम होगा तो फिर ऐसा करो कि बाप मर गया कि सारी इस्टेट विनोबा को दे डालो। कहते हैं अगर लड़की को हक देंगे तो धर्म पर हमला होगा। जरा दक्षिण में जाकर देखें तो मालूम होगा कि वहाँ तो स्त्री-प्रधान समाज है। अगर यह होता कि लड़की को पिता के घर में हक नहीं है तो लड़की में पिता के गुण प्रकट नहीं होते। पर नई जातियाँ इसमें ऐसी देखी हैं जिनमें पिता का रूप उतरा है। लड़की में पिता का रूप आता है, पिता के गुण आते हैं। ऐसी हालत में उन्हें हक न देने के मानी क्या होते हैं? यही कि पुरुष सारी संपत्ति अपने हाथ में रखना चाहते हैं और स्त्री पर अपना अंकुश रखना चाहते हैं। कहते हैं कि अंकुश रखना जरूरी है। यह बताने के लिए ये लोग धर्म का सहारा लेते हैं। हम कहते हैं कि अगर ऐसा चाहते हो तो 'किताबें डाल पानी में'।

टीकापट्टी (पूर्णिया)
१-११-५४

तलाक में मर्यादा बरतें

पति-पत्नी में अन्याय, अनाचार, अत्याचार और परस्पर द्वेष होता है, तो उससे बच्चों को तकलीफ होती है। इस हालत में उन्हें तलाक का हक हो तो कोई हर्ज नहीं। सारा धर्म स्नेह पर खड़ा है, कानून पर नहीं। धर्म बाधा देनेवाला नहीं, अनुज्ञा देनेवाला है। इसलिए विशेष परिस्थितियों में तलाक का अधिकार देना उचित माना जायगा। इस पर यदि कोई यह कहे कि 'इससे तो बहुत सारे तलाक देने लग जायेंगे' तो यह मानना धर्म के लिए ठीक नहीं। हाँ, तलाक के लिए कुछ कारण रखने

चाहिए। मूल विचारों को कायम रखते हुए उदार बुद्धि रखकर तमाम को मान्यता देनी चाहिए।

पुनपुन (पटना)
२६ १ ५२

आध्यात्मिक अनधिकार मिटाया जाय

गृह-संगोपन का कार्य स्त्रियों के पास ही रहनेवाला है यह तो दैव ही बोल चुका है। फिर वह प्रगतिशील अमेरिका हो या पिछड़ा हुआ भारत। लेकिन अब तक इस बात का ठीक-ठीक विचार नहीं हो पाया है कि मुख्य प्रश्न कहाँ अटका है। हिन्दू धर्म में स्त्रियों को कुछ अपात्रता है। उन्हें कामकाज में हक मिलता नहीं और वह उन्हें पुरुषों के बराबर मिलना चाहिए, ऐसा कहा जाता है—इस विचार के प्रति मेरी सहानुभूति है। पहले मैंने दिल्ली-यात्रा के समय ही कहा था कि हिन्दू-कोड बिल अच्छा है। पिछले चुनाव के समय सनातनी लोगों ने पंडित नेहरू को हिन्दू-कोड बिल को लेकर उत्तेजित कर दिया था। तब उन्होंने कहा था कि इस बारे में आप लोग विनोबा से ही पूछें क्योंकि वे शास्त्रों के उत्तम जानकार हैं। विनोबा तो इसके अनुकूल है। किन्तु वस्तुतः जिस समान अधिकार की आवश्यकता है, वह तो कोई माँगता ही नहीं।

स्त्रियों को हिन्दू-धर्म ने सन्यास और ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं दिया है। यह अधिकार हम पर सौंपकर स्त्रियाँ संन्यासिनी होंगी ऐसी बात नहीं है। यह जो आध्यात्मिक अपात्रता है उससे स्त्रियों में स्थायी हीन भावना आ गयी है। हिन्दू-समाज में स्त्रियों के लिए गृहस्थाश्रम को महत्त्व देकर 'सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते' अर्थात् हजार पिता की अपेक्षा एक माता श्रेष्ठ है—इसके अनुसार नियम किये गये हैं। जिस मनुस्मृति का यह वचन है उसीका दूसरा श्लोक इस प्रकार है:

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

ऐतिहासिक दृष्टि से यह श्लोक क्षेपक या बाद का भी होगा। क्या लिए यह सब एक ही लेखक का न भी हो तो भी यह सब एक ही पुस्तक में है और यह पुस्तक हिन्दू-धर्म न अपने सिर चढ़ायी है।

लड़की का बाप की जायदाद में हक नहीं रहना चाहिए ऐसा कहने वाले दलील देते हैं कि उसको दोनों ओर का हक क्यों चाहिए? विवाह होने पर उसे पति की ओर से कुछ-न-कुछ मिलेगा ही। अर्थात् ऐसी 'दोगीपन' कोई लेने को ही तैयार नहीं कि प्रत्येक लड़की बिना ब्याही रह जायेगी। उनको लगता है कि लड़की को तो यहाँ से जाना ही है। इसका यह अर्थ है कि स्त्रियों को केवल गृहस्थाश्रम का ही अधिकार था अन्य आश्रमों का अधिकार नहीं था। प्राचीन ब्राह्मण-ग्रन्थ में कहा गया है कि 'दुहिता पंडिता जायेत' अर्थात् जो यह चाहते हों कि उनकी कन्या पंडिता बने उन्हें अमुक-अमुक करना चाहिए। अब इसका अर्थ शंकराचार्य ने शांकरभाष्य में क्या किया है उसे देखिये। जिन शंकराचार्य के प्रति आदर से मेरा आनतमस्तक रहता है उन्होंने इसका अर्थ यह किया है कि 'पंडिता गृहकर्मकुशला इत्यर्थः' पंडिता यानी गृह-कार्य में कुशल। वे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि लड़की स्वतन्त्र रूप से पंडिता हो सकती है। लड़की के स्वावलंबिनी होने की कल्पना भी वे नहीं कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने ऐसा अर्थ किया। स्त्रियाँ गृह-कार्यकुशला हों इसमें मेरा कोई विरोध नहीं है। वे ऐसी नहीं होंगी तो देश को कोई लाभ नहीं होगा। किन्तु गृहकार्य-कुशलता में ही उनके पांडित्य की परिसमाप्ति हो यह ठीक नहीं है। यह जो आध्यात्मिक अनधिकार एक समय स्त्रियों और शूद्रों पर लादा गया था वह दूर होना चाहिए।

मेरी माँ बचपन में एक मजेदार कहानी सुनाती थी कि 'किसी कन्या होना कितना कठिन है यह तू नहीं जान सकता। पहले यह काम शंकर के पास था। पर वे ऊब गये और पार्वती से कहा कि वह चार दिन के लिए यह कार्य सँभाले। तब से यह काम उनके सुपुर्द हुआ और

स्त्रियों का उद्धार और रक्षा ३

हिन्दुस्तान में स्त्रियों का अपना एक स्थान है और एक इतिहास भी। यों तो स्त्री-पुरुष का इतिहास सम्मिलित ही होता है, फिर भी स्त्रियों का अपना एक इतिहास है। प्राचीन काल से हिन्दुस्तान में संस्कारों की परम्परा चली आयी है और वह कम-से-कम दस हजार साल पुरानी तो है ही। उसका इतिहास भी मौजूद है। जिस तरह लिखित इतिहास मिलते हैं, वैसा लिखित इतिहास नहीं है। लेकिन दूसरे बेहतर तरीके से लिखा इतिहास मिलता है यानी हजारों ग्रन्थों में उसकी झलक मिलती है।

स्त्रियों के तीन उद्धारक

स्त्रियों के उद्धार के लिए हिन्दुस्तान में जो प्रयत्न हुए, उनमें प्राचीन काल में भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् बुद्ध के नाम आते हैं तथा अर्वाचीन काल में गांधीजी का नाम आता है। बीच का सारा काल शून्य ही गया ऐसा तो नहीं है। उसका भी एक इतिहास है। लेकिन ये तीन नाम भुलाये नहीं जा सकते।

भगवान् श्रीकृष्ण

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के लिए जो कुछ किया उसकी गुणगाथाएँ हिन्दुस्तानभर में ५ साल से लगातार गायी जा रही हैं। जब द्रौपदी पर एक प्रसंग आया सभा में उसका वस्त्रापहरण हो रहा था तब श्रीकृष्ण का स्मरण द्रौपदी ने किया। उसके तीन श्लोक हैं। वे तीन श्लोक संसार समुद्र से मनुष्य को पार करने के लिए पर्याप्त हैं ऐसा माना जाता है। गांधीजी ने आश्रम में जो प्रार्थना बनायी उसमें स्त्रियों के लिए वे श्लोक

बोले जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का नाम लेकर द्रौपदी प्रार्थना कर
ती कि 'जब मेरे पति हार गये दूसरे भाई भी देखते रहे, भीष्म
भी हार गये तो इस वक्त तेरे सिवा मेरी रक्षा और कौन करेगा ?
श्लोकों में भगवान् के जो विशेष संबोधन आये हैं उनमें एक 'गोपी
प्रिय कृष्ण' है। यानी 'हे कृष्ण तू, जो कि गोपीजनों का प्रिय है,
पर गोपियों का प्यार था और जिसका गोपियों पर प्यार था वह तू
बचाव के लिए आ जा।" ऐसी भावना द्रौपदी ने की। सारा भागवत
एक कथा पर खड़ा है। श्रीकृष्ण का गोपियों पर जो प्रेम था स्त्रि
लिए मन में जो इज्जत थी और बन्धु के नाते स्त्रियों के लिए वे जो
करते थे वह हिन्दुस्तान के इतिहास में अद्वितीय है। हिन्दुस्तान
श्रीकृष्णगाथा से मधुर गाथा सुनने को या पढ़ने को दूसरी नहीं मिलती

भगवान् महावीर

महावीर का इतिहास एक अद्भुत इतिहास है। जिस सम
महावीर थे उसके चालीस साल बाद गौतम बुद्ध अवतरित हुए। ऐ
मान लीजिये कि जितना लोकमान्य और आज की पीढ़ी में अन्
उतना ही महावीर और बुद्ध के जमाने में था। दोनों का जन्म ए
प्रदेश बिहार में हुआ। इसलिए हो सकता है कि महावीर स्वामी ने
से ऐसा हो। महावीर ज्येष्ठ होंगे और बुद्ध जवान होंगे ऐसा मान
है और वैसे प्रमाण भी है। महावीर-संप्रदाय में स्त्री-पुरुष में किसी
का भेद नहीं किया गया है। पुरुषों को जितने अधिकार दिये गये
अधिकार स्त्रियों को भी दिये गये थे। मैं उन मामूली अधिकारों की
नहीं कहता जैसा कि इन दिनों होता है और जिसकी चर्चा बा
बहुत चलती है। उस समय वैसे अधिकार प्राप्त करने की आवश्यक
महसूस नहीं हुई होगी। मैं तो आध्यात्मिक अधिकारों की बात क
हूँ। पुरुषों को जितने आध्यात्मिक अधिकार हैं वे सब स्त्रियों के

सकते हैं। इन आध्यात्मिक अधिकारों में महावीर ने कोई भेद-बुद्धि नहीं रखी। परिणामस्वरूप उनके शिष्यों में पुरुषों से ज्यादा साध्वियाँ थीं। वह प्रथा आज तक जैन-धर्म में चली आयी है। आज भी जैन स्त्रियाँ (साध्वियाँ) संन्यासिनी होती हैं। जैन-धर्म में नियम है कि संन्यासी अकेले नहीं घूम सकते। दो से ज्यादा भी नहीं घूम सकते और दो से कम भी नहीं—ऐसा संन्यासी और न साध्वियों के लिए नियम है। अतः दो-दो साध्वियाँ हिन्दुस्तान में घूमती रहती हैं।

महावीर के चालीस ही साल बाद गौतम बुद्ध हुए, जिन्होंने स्त्रियों को संन्यास देना उचित नहीं माना। स्त्रियों को संन्यास देने से धर्म-मर्यादा नहीं रहेगी, ऐसा भरोसा उनको था। एक दिन उनका शिष्य आनन्द एक बहन को ले आया और बुद्ध भगवान् के सामने उसे उपस्थित किया और बुद्ध भगवान् से कहा, "यह बहन आपके उपदेश के लिए सर्वथा पात्र है, ऐसा मैंने देख लिया है। आपका उपदेश, अर्थात् संन्यास का उपदेश, इसे मिलना चाहिए।" तब बुद्ध भगवान् ने उसे दीक्षा दी और कहा, "आनन्द, तेरे आग्रह और प्रेम के कारण यह काम कर रहा हूँ। लेकिन इसके अपने सम्प्रदाय के लिए एक बड़ा खतरा मैंने उठा लिया है।" इस वाक्य से बुद्ध को जिस खतरे का अंदेशा था, वह पाया जाता है। यद्यपि बौद्ध धर्म का इतिहास पराक्रमशाली है, उसमें दोष होते हुए भी वह देश के लिए अभिमान रखने लायक है। लेकिन जो डर बुद्ध को था, वह महावीर को नहीं था, यह देखकर आश्चर्य होता है। महावीर निडर दीख पड़ते हैं। इसका मेरे मन पर बहुत असर है। इसीलिए मुझे महावीर के प्रति विशेष आकर्षण है। बुद्ध की महिमा भी बहुत है। सारी दुनिया में उनकी करुणा की भावना फैल रही है। इसीलिए उनके व्यक्तित्व में किसी प्रकार की न्यूनता रही, ऐसा मैं नहीं मानता। महापुरुषों की भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ होती हैं। लेकिन कहना पड़ेगा कि गौतम बुद्ध को व्यावहारिक भूमिका छू गयी और महावीर को वह छू न सकी। उन्होंने स्त्री-पुरुष में

तत्त्वतः भेद नहीं रखा। वे इतने दृढ़प्रतिज्ञ रहे कि मेरे मन में उनके लिए एक विशेष ही आदर है।

रामकृष्ण परमहंस के सम्प्रदाय में स्त्री सिर्फ एक ही थी और वह थी श्री शारदादेवी, जो रामकृष्ण परमहंस की पत्नी थी और नाममात्र की पत्नी थी। वैसे तो वह उनकी माता ही हो गयी थी तथा संप्रदाय के सभी भाइयों के लिए वह मातृस्थान में ही थी। फिर भी उनके सिवा और किसी स्त्री को दीक्षा नहीं दी गयी थी। महावीर स्वामी के बाद २५ साल बीत गये, लेकिन हिम्मत नहीं हो सकती थी कि बहनों को दीक्षा दी जाय। मैंने सुना कि चार साल पहले रामकृष्ण परमहंस-मठ में स्त्रियों को दीक्षा दी जाय, ऐसा उन्होंने तय किया। स्त्री और पुरुष का आश्रम अलग रखा जाय, यह अलग बात है; लेकिन अब तक स्त्रियों को दीक्षा ही नहीं मिलती थी, वह अब मिल रही है। इस पर से अन्दाज लगता है कि महावीर ने २ साल पहले स्त्रियों को दीक्षा देने में कितना बड़ा पराक्रम किया।

श्रीकृष्ण और महावीर की तुलना

श्रीकृष्ण ने जो काम किया, वह सन्यास-दीक्षा का नहीं, बल्कि यह था कि स्त्री और पुरुष भक्ति-भावना में समान रहें और अनासक्ति तथा निष्कामभाव से जीवन में किसी प्रकार का भेदभाव न रखें। यह जीवन का एक बुनियादी विचार है। बहनों को सन्यास का अधिकार मिल जायगा तो बहुत ज्यादा स्त्रियाँ सन्यास ले लेंगी, ऐसा कुछ होनेवाला नहीं है। उस हालत में कम ही बहनें शायद सन्यास लेंगी, यह अलग बात है। सन्यास का समान अधिकार देना एक तरह से जरूरी है। किन्तु गृहस्थाश्रम में भी भेद न रहे, एक-दूसरे के साथ भाई-बहन की तरह मिलते रहें, यह श्रीकृष्ण ने बताया। यह जीवन की दृष्टि से श्रीकृष्ण ने किया है, लेकिन इस विचार को गति देने में तो गुरु महावीरस्वामी का इतिहास अद्वितीय लगता है।

महात्मा गांधी

हमारे यहाँ किसीको शायद ही ऐसा कोई विचार सूझता हो जिसके लिए आधारभूत चिंतन शास्त्रों में न मिले। हमारे यहाँ ब्रह्म-चिन्तन बहुत हुआ है। इसलिए नये विचार के लिए आधार न मिले ऐसा नहीं है। किन्तु एक व्यावहारिक विचार के तौर पर, यद्यपि शास्त्र में आधार था यह चीज बनती नहीं थी। गांधीजी ने उसे शुरू किया और कहा कि गृहस्थाश्रम में भी लोग वानप्रस्थाश्रम के तौर पर रह सकते हैं। लेकिन उनको वानप्रस्थाश्रम की ही रहेगी। जब गृहस्थाश्रम में रहते हैं तब ऐसी प्रतिज्ञा में बँधे नहीं रहते प्रजोत्पादन करते हैं। अगर वासना हुई तो एक-दूसरे के प्रति वफादार रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। प्रजोत्पादन की जिम्मेदारी उठा लेते हैं। लेकिन धीरे-धीरे उस वासना को छोड़कर गृहस्थाश्रम में वानप्रस्थ की वृत्ति से रह सकते हैं। जितना जल्दी गृहस्थाश्रम से छूट जा सके उतना अच्छा। शादी होने के बाद एक भी सन्तान न हो और छूट जायें तो भी अच्छा। एक सन्तान के बाद छूट जायें तो भी अच्छा। यह बात बहुत चलेगी ऐसा नहीं है। ऐसी चीजें चलने के लिए कुछ वातावरण चाहिए। हम ऐसा वातावरण पैदा नहीं कर सके हैं।

भोगों का आकर्षण

यद्यपि गांधीजी ने सामने यह आदर्श रखा तथापि आजकल लोगों के सामने जोरों से भोग और बढ़ रहे हैं। स्वराज्य के इस काल में कुछ फर्क हुआ है जिसका हम गौरव कर सकते हैं। लेकिन कुछ परिवर्तन ऐसे भी हुए हैं जिनके लिए रोना आता है। भोग-विलास के साधन बढ़ रहे हैं। लोग भी प्रवृत्ति में जकड़े जा रहे हैं, ऐसा महसूस भी नहीं होता। महसूस होता तब तो कुछ निस्तार था। लेकिन आजकल तो संतति-नियमन की बात का निर्लज्जता से प्रचार हो रहा है। जो पुरुष उसका

प्रचार करते हैं। उनमें बहुत बड़े दयालु, करुणावान् पुरुष भी हैं, यह मैं जानता हूँ। उनको ऐसा प्रचार करने में व्यावहारिकता लगती है। लेकिन उनकी 'करुणा' गुजराती के 'उपरछल्ली' मानी ऊपर-ऊपर की है, गहरी नहीं। वह गुमराहकारक है। वह देश की आत्म-शक्ति को क्षीण करनेवाली साबित हो सकती है। ब्याह में ऐसा ही हुआ है। पुरुष की हीनता बढ़ती चली जाती है और पुरुषार्थ-शक्ति क्षीण हो रही है। क्योंकि सारा वातावरण ही प्रतिकूल दीखता है। इसलिए गांधी-विचार फैला हुआ नहीं दिखाई पड़ता। फिर भी वह विचार मिटेगा नहीं, क्योंकि एक नयी राह मिल गयी है। एक स्वतन्त्र क्षेत्र गृहस्थों के लिए मिल जाता है। गृहस्थाश्रम में होते हुए भी पहले ही दिन से कोशिश करनेवाले निकलेंगे और उस कोशिश के बावजूद सन्तान हो जाय, तो वे पराक्रमी होंगे। इस तरह गांधीजी ने बताया कि गृहस्थाश्रम में वानप्रस्थ-वृत्ति चले।

शराब की दूकानों पर धरना

गांधीजी ने स्त्रियों की सारी शक्ति खोल दी। अहिंसाकारी शस्त्र सामने आया। यह शस्त्र पुरुष जितना इस्तेमाल कर सकते हैं, उससे ज्यादा स्त्रियाँ इस्तेमाल कर सकती हैं। स्त्रियों को अब अपनी देहली छोड़कर बाहर आना चाहिए।

पचीस साल पहले की बात है, चर्चा चल रही थी कि शराब की दूकान पर पिकेटिंग करने का क्या इन्तजाम किया जाय। किसीने कुछ सुझाया तो किसीने कुछ। गांधीजी ने सुझाया कि यह काम स्त्रियों का होना चाहिए। लोग सुनते ही रह गये कि गांधीजी क्या बोल गये। वहाँ बिलकुल अनीतिमान् लोग आते हैं और सब प्रकार का बुरा बर्ताव चलता है, ऐसे लोगों के बीच स्त्रियाँ क्या करेंगी? लेकिन गांधीजी ने कहा कि वहाँ स्त्रियाँ ही काम करेंगी। वे नरक में गिरे लोग हैं, उनको निकालने हमारे पास जो ऊँची-से-ऊँची नैतिक शक्ति है, वहाँ भेजी जानी चाहिए।

उसके अनुसार स्त्रियां वहां गयीं और उन्होंने जो काम किया वह सारे भारत ने देखा।

एक बार अप्पासाहब यहां आये थे। वे बोले कि गांधीजी ने जादू कर दिया। स्त्रियों की उन्नति के लिए २५-२५ साल तक मेहनत करके जो काम हम नहीं कर सके और जिसकी कल्पना नहीं कर सके वह चीज गांधीजी ने कर दी। यह गांधीजी ने क्या किया यह तो अहिंसा ने किया है। जब तक आपका शस्त्र हिंसा रहेगा तब तक दुनिया में आप कितने भी तत्त्व लायें स्त्रियों का स्थान दोयम दर्जे का ही रहेगा। कितनी भी कोशिश करें, उन्हें उत्तम स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए अगर स्त्रियों को उत्तम स्थान देना हो तो यह जरूरी है कि रक्षण का साधन अहिंसा हो। इससे मातृ-शक्ति को स्थान मिलेगा। बुद्ध भगवान् और महावीर के जमाने में स्त्रियों का उद्धार हुआ और गांधीजी की बदौलत स्त्रियों का उत्थान हुआ क्योंकि इन लोगों ने रक्षण शक्ति अहिंसा मानी हिंसा नहीं। हिंसा तो भक्षण-शक्ति है।

बीच का युग

बीच में एक ऐसा जमाना आया जो न इस प्रकार का था न उस प्रकार का। न महावीर के समान दीक्षा देने की किसीने बात की न गांधीजी के समान वात्सल्य वृत्ति की बात और न कृष्ण जैसी सब लोगों में एक साथ सहज भाव से बिना संकोच काम करने की किसीने बात की। उस जमाने में भक्ति के द्वारा स्त्रियों के लिए मुक्ति का द्वार खोलने की बात चली। उस समय बहनों को सन्यास-दीक्षा की मनाही थी। बीच में ऐसी हालत हुई कि पुरुष-सन्यासी स्त्रियों का दर्शन भी नहीं कर सकते थे। एक दफा मीराबाई वृन्दावन गयी थी। वहां एक सत पुरुष थे जिनका बहुत बोलबाला था। मीरा ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उसे कहा कि सन्यासी का दर्शन हो तो कुछ लोग

के मठ पर आरोहण होगा। शंकराचार्य का ही पीठ हो ऐसा नहीं है। स्त्रियों का अपना पीठ बन जाय। वैराग्यशील और ज्ञान-प्रचार करने वाली बहनें जिनसे शास्त्र बन सकता है, धर्म बदल सकता है क्यों न निकलें यह मेरी समझ में नहीं आता। हिन्दू-धर्म में स्त्रियों को दर्जे हासिल नहीं हैं जिनमें वे स्वयमेव आगे बढ़ सकती हैं। वे दर्जे हासिल करना भी बाकी है।

पंढरपुर
११-५-५८

आत्मशक्ति विकसित करें

स्त्रियों की रक्षा पुरुषों पर निर्भर है, ऐसा सदियों से माना गया है। जब तक यह भावना कायम रहेगी तब तक स्त्रियों की सच्ची रक्षा असम्भव है। वास्तव में यह मानने की जरूरत ही नहीं कि स्त्री को रक्षण की आवश्यकता है, लेकिन माना इसी तरह गया है। ऐसा क्यों माना गया? इसलिए कि हिंसा के साधन उसके पास पर्याप्त नहीं हैं। हिंसा के क्षेत्र में वह पुरुष की अपेक्षा कमजोर पड़ जाती है। इसलिए वह पुरुषों के द्वारा रक्षित हो गयी है। अर्थात् इसमें हिंसा की प्रतिष्ठा स्वीकार की गयी है। किन्तु आज की परिस्थिति हमें साफ बता रही है कि हमें अब हिंसा की नहीं बल्कि अहिंसा की प्रतिष्ठा स्थापित करनी होगी।

आत्मज्ञान बहुत ही आसान

हमें समझ लेना चाहिए कि स्त्री हर किसी हालत में आत्मा के बल पर अपने-आपको बचा सकती है। शरीर के आधार पर निर्भर रहने के बजाय आत्मा के आधार पर जीवित रहने की कला हम सबको सीखनी होगी। मैं तो मानता हूँ कि जिसे सतत जीवनभर निष्ठापूर्वक सेवा करनी है, उसे आत्मज्ञान की बात समझनी ही होगी। आज हमें

यह आत्मज्ञान शब्द कुछ बड़ा-सा लगता है। परन्तु वस्तु इतनी सरल है कि एक साधारण बालक भी इसे आसानी से समझ सकता है। गणित सीखना कुछ कठिन हो सकता है परन्तु आत्मज्ञान तो गणित से भी सरल है। कई लोगों को 'वी आर सेवन' वाली कविता तो मशहूर ही है। यह बालिका अपने मरे हुए भाइयों को गिनकर कहती है कि हम सात हैं। आत्मा की अमरता का भान उसे सहज प्राप्त है।

शरीर-परायणता से ही भय

इसको समझना तो कठिन नहीं है, लेकिन उस पर अमल करना कठिन मालूम होता है। क्योंकि आज हमारा सारा-का-सारा जीवन शरीर-प्रधान हो गया है। हम चाहे सुन्दरता के बारे में सोचते हों चाहे बल के बारे में हमारी दृष्टि शरीर प्रधान ही रहती है। जब तक यह शरीर-परायणता रहेगी स्त्रियों के मन में डर कायम ही रहेगा। दुनिया में आज भी इसी शरीर-परायणता से काम चलता है। इसीमें से भय निर्माण होता है।

निर्भयता का आत्मतेज

रामायण में सीता का वर्णन हमने पढ़ा है। रावण उससे प्यारभरी बातें किया करता था। वह उससे बोलती भी नहीं थी। एक बार जब बोलीं तो सामने एक तिनका पकड़कर। इस तरह सीता ने बताना चाहा कि 'हे रावण मैं तुझे इस तिनके के समान समझती हूँ।' रावण उसका कुछ नहीं बिगाड़ सका। सीता का उदाहरण असामान्य है ऐसा हम न मानें। ऐसा होता तो इस तरह की मिसाल हमारे सामने क्या रखी जाती? कालेज की अध्यक्षा हर कोई नहीं बन सकती किन्तु सीता तो हर कोई बन सकती है क्योंकि वह आत्मा का विषय है। आत्मा पर निर्भर रहने-वाले व्यक्ति की आँख में जो निर्भयता का तेज होता है वह दूसरे को

सुव्यवस्थितता का पाठ

जैसे सुव्यवस्थित रहने का पाठ तो हमें लेना ही चाहिए। काम करने पर समुदाय के साथ शरीर से काम करने का शिक्षण हमें प्राप्त करना चाहिए। कवायद तथा लाठी के खेल आदि के द्वारा व्यवस्थितता की शिक्षा मिल सकती है, परन्तु इससे ही हमारा काम होगा ऐसा नहीं समझना चाहिए। हमें शरीर और आत्मा के भेद को जानना चाहिए। यदि हम यह ज्ञान लें तो ये खेल हमें तो शरीर के विषय में बे-परवाह रहने और हँसते-हँसते मर जाने में मददगार हो सकते हैं।

महिलाश्रम जैसी संस्था में जहाँ देश के दूर कोने से लड़कियाँ आती तथा सुन्दर संस्कार और शिक्षा पाती हैं अगर आप लोग इस तरह निर्भयतापूर्वक रहना और मरना सीख लें तो नाजुक परिस्थिति में आप देश की महान् सेवा कर सकती हैं और परम श्रेय प्राप्त कर सकती हैं।

महिला-आश्रम वर्धा
५-११-४१

उद्धरेत् आत्मना आत्मानम्

एक प्रश्न है — स्त्रियों का उद्धार स्त्रियों के द्वारा ही होनेवाला है, ऐसा आप कहते हैं पर यह होगा कैसे?"

स्त्रियों का उद्धार तो तभी होगा जब स्त्रियाँ जागेंगी और स्त्रियों में शंकराचार्य जैसी कोई प्रखर ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न शक्तिमान् और निष्ठावान् स्त्री होगी। दुनिया में अभी तक समाज पर जिन लोगों का प्रभाव हुआ है वे पुरुष ही हैं। सब पर भी उनका प्रभाव हुआ है। इसी तरह जब स्त्रियों का सब पर प्रभाव होगा तभी उनका उद्धार होगा। ऐसा होना बहुत जरूरी है।

स्त्रियों के उद्धारक के रूप में पुरुष भगवान् हो गये हैं। महावीर स्वामी ने तो स्त्रियों के लिए काम किया। गांधीजी ने भी स्त्रियों के लिए

काम किया (यह पीछे बताया भी जा चुका है)। अण्णासाहब कर्वे जैसे पुरुष ने भी अपना सारा जीवन इसी काम में लगाया है। स्वामी दयानन्द ने स्त्रियों के लिए बहुत कहा है और किया है। फिर भी स्त्रियों को आज क्या दशा है? समाज में पुरुषों की ही अधिक सत्ता है। कारण विश्वास स्त्रियों के लिए कार्य किया वे सबके सब पुरुष हैं इसलिए वे ज्यादा कुछ नहीं कर सके। यह काम स्त्रियों को स्वयं करना होगा तभी भलीभाँति हो सकेगा। अनुभव का एक सिद्धान्त है कि प्राणी का उद्धार प्राणी के आत्मबल से ही होगा। परमेश्वर की मदद उसीको मिलती है, जो प्राणी स्वयं कोशिश करता है। उसके मन में जब अत्यन्त तीव्रता पैदा होती है तभी परमेश्वर भी मदद करता है। तीव्रता न हो प्रयत्न में तत्परता न हो तो भक्ति नहीं होती। जब तीव्रता होती है, तब भक्ति उठती है और परमेश्वर मदद करता है। किसी भी जीव का उद्धार उस जीव की तीव्र इच्छा से ही होगा। उसकी इच्छा-शक्ति से ही सारा काम बनेगा। यों परमेश्वर तो सबका उद्धारक है ही किन्तु जो अपने उद्धार के लिए तीव्र इच्छा-शक्ति रखता है उसीकी वह मदद करता है।

ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ

एक जमाने में स्त्रियों के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य था। जिस तरह पुरुष ब्रह्मवादी हो गये हैं उसी तरह स्त्रियाँ भी ब्रह्मवादिनी हो गयी हैं। स्त्रियों के कुछ सूक्त भी वेद में आते हैं। पहले स्त्रियों को वेदाभ्यास का अधिकार था। अब स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं दिया जाता है परन्तु वेद में अम्भृणी ऋषि-कन्या का एक सूक्त है। ऐसी ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ हो गयी हैं जिनके सूक्त भी वेद में बहुत प्रसिद्ध हैं। स्त्रियाँ परमेश्वर के साथ इतनी एकरूप हो गयी थीं कि उनका गौरव करते समय वे कहती हैं कि परमेश्वर की कृति मेरी ही कृति है। उन्होंने माया या

प्रमाणित किये बिना नहीं रहता। हम सब गाँव के उस ठेठ को पह-
चानते हैं।

वाल्मीकि और नारद की मिसाल तो सभी जानते हैं। वाल्मीकि ने अनेक लोगों की हत्या की थी परन्तु उसे तब तक नारद जैसा निर्भय मनुष्य ही नहीं मिला था। या तो उसे ऐसे लोग मिले जो डरकर भाग जाते थे या ऐसे जो उस पर हमला कर बैठते थे। नारद की तरह हँसकर निर्भय की बात करनेवाला उसने अपने जीवन में पहली ही बार देखा था। नतीजा यह हुआ कि वाल्मीकि जो पहले एक हिंसक भील था एक महान् ऋषि बन गया। इस कहानी में जीवन का सिद्धान्त भरा है। अगर हम निर्भय और शान्त रहें, तो हम पर हथियार चलानेवाले के हाथ ही रुक जाते हैं।

श्रद्धा की आवश्यकता

मुझसे एक भाई ने पूछा कि अगर महिलाश्रम-जैसी संस्था पर गुंडों का हमला हो जाय तो क्या करना चाहिए? इसका उत्तर तो सरल है। अगर सबको [illegible] तो जैसे ही हमला हो हम लोग बिगुल बजायें और इकट्ठा हो जायें तथा भगवान् का भजन शुरू कर दें। इसके लिए जरूरत श्रद्धा की है।

शरीर-बल की विफलता

इसके विपरीत मान लीजिये कि हम लोगों के हाथ में तलवारें दे दी हैं, तो सामनेवाले के पास तलवार से बढ़कर हथियार भी तो हो सकता है और हमारी तलवार निकम्मी साबित हो सकती है। इस लड़ाई में हमने शारीरिक शक्ति की विफलता का अच्छा दर्शन किया। जिस तरह दस-दस बीस-बीस लाख लोगों ने एक साथ दूसरे मुल्कों के लोगों पर हमले किये हैं, उसी तरह उतनी ही बड़ी तादाद में लोगों ने अपने

हथियार रख भी दिये हैं। वहाँ वे देखते हैं कि सामनेवाला बलवान् है, वे हथियार रख देते हैं परन्तु चले जाते हैं।

इसलिए हमें आत्म-शक्ति पर निर्भर रहना चाहिए। स्त्रियों में इस आत्मशक्ति की कोई कमी नहीं है पर उसे प्रकट करने के लिए जीवन को उसके अनुकूल बनाना होगा। खाने के लिए जीना नहीं होगा जीने के लिए खाना होगा। जिस तरह हम मकान का किराया देते हैं या चरखे से काम लेने के लिए उसमें तेल देते हैं ठीक उसी तरह शरीर से काम लेने के लिए हम उसे आवश्यक पोषक तत्त्व देने चाहिए। दीपावली के निमित्त हम चरखे में चमेली का तेल तो नहीं देते। इस तरह शौक या मौज के लिए नहीं जरूरत के हिसाब से ही हम शरीर को खुराक देनी चाहिए क्योंकि यह तो वैज्ञानिक प्रयोग है। उसमें भोग और विलास को स्थान नहीं है। भोग और विलास से भरा जीवन तो अन्त पतन पर जाकर ही खत्म होता है।

अपमान बनाम मृत्यु

जब कोई किसीसे कहता है कि 'तुम्हें मुसलमान बनना होगा वरना मार डाले जाओगे' तो हमें उसे साफ समझाना चाहिए कि भाई मुसलमान बनना भी तो एक खास तरह की श्रद्धा है और श्रद्धा जबरन दी जा नहीं सकती। इस पर भी सामनेवाला अगर मूर्ख ही है और कहता है कि 'या तो कलमा पढ़ना होगा या मरना होगा" तो शान्ति के साथ कहा जा सकता है "भाई मरना तो सबको ही है, जो मारना हो तो मार लो।" किन्तु इसके विपरीत अगर सामनेवाले की जान बुरबाप मान ली जाती है तो हम शरीर से मरें ही अब आप अपनी आत्मा को तो हमने अपवित्र-से-अपवित्र अपमानित कर ही डाला। अपमानित होने की अपेक्षा मर जाने की ताकत रही तो एक छोटा-सा बच्चा भी निर्भयता के साथ संकट का सामना कर सकता है।

सुव्यवस्थितता का पाठ

वैसे सुव्यवस्थित रहने का पाठ तो हमें लेना ही चाहिए। काम करने पर समुचित के साथ तरीके से काम करने का शिक्षण हमें प्राप्त करना चाहिए। व्यवस्था तथा लाठी के खेल आदि के द्वारा व्यवस्थितता की शिक्षा मिल सकती है, परन्तु उससे ही हमारा काम होगा ऐसा नहीं समझना चाहिए। हमें शरीर और आत्मा के भेद को जानना चाहिए। यदि हम यह ज्ञान लेंगे तो ये लोग हमें तो शरीर के विषय में बे-परवाह रखेंगे और हँसते-हँसते मर जाने में मददगार हो सकते हैं।

महिलाश्रम जैसी संस्था में जहाँ देश के दूर कोने से बहनें आती तथा सुन्दर संस्कार और शिक्षा पाती हैं, अगर आप लोग इस तरह निर्भयतापूर्वक रहना और मरना सीख लें तो नाजुक परिस्थिति में आप देश की महान् सेवा कर सकती हैं और परम श्रेय प्राप्त कर सकती हैं।

महिला-आश्रम वर्धा
५-११ ३९

उद्धरेत् आत्मना आत्मानम्

एक प्रश्न है: 'स्त्रियों का उद्धार स्त्रियों के द्वारा ही होनेवाला है, ऐसा आप कहते हैं, पर यह होगा कैसे?'

स्त्रियों का उद्धार तो तभी होगा जब स्त्रियाँ जागेंगी और स्त्रियों में शंकराचार्य जैसी कोई प्रखर ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न शक्तिमान् और विद्यावान् स्त्री होगी। दुनिया में अभी तक समाज पर जिन लोगों का प्रभाव हुआ है, वे पुरुष ही हैं। धर्म पर भी उनका प्रभाव हुआ है। इसी तरह जब स्त्रियों का धर्म पर प्रभाव होगा तभी उनका उद्धार होगा। ऐसा होना बहुत जरूरी है।

स्त्रियों के उद्धारक के रूप में कृष्ण भगवान् हो गये हैं। महावीर स्वामी ने भी स्त्रियों के लिए काम किया। गांधीजी ने भी स्त्रियों के लिए

म किया (यह पीछे बताया ही जा चुका है) । अण्णासाहब कर्वे ने विशेष
रूप से भी अपना सारा जीवन इसी काम में लगाया है। स्वामी दयानन्द ने
त्रियों के लिए बहुत कहा है और किया है। फिर भी स्त्रियों की आज क्या
दशा है? समाज में पुरुषों की ही अधिक सत्ता है। कारण जिन्होंने स्त्रियों के
लिए कार्य किया वे सबके सब पुरुष हैं इसलिए वे ज्यादा कुछ नहीं कर
सके। यह काम स्त्रियों को स्वयं करना होगा तभी भलीभाँति हो सकेगा।
अनुभव का एक सिद्धान्त है कि प्राणी का उद्धार प्राणी के आत्मबल से ही
होगा। परमेश्वर की मदद उसीको मिलती है, जो प्राणी स्वयं कोशिश
करता है। उसके मन में जब अत्यन्त तीव्रता होती है तभी परमेश्वर भी
मदद करता है। तीव्रता न हो प्रयत्न में तड़पन न हो तो भक्ति नहीं
होगी। जब तीव्रता होती है तब भक्ति होती है और परमेश्वर मदद
करता है। किसी भी जीव का उद्धार उस जीव की तीव्र इच्छा से ही
होगा। उसकी इच्छा-शक्ति से ही सारा काम बनेगा। जो परमेश्वर तो
सबका उद्धारक है ही किन्तु जो अपने उद्धार के लिए तीव्र इच्छा-शक्ति
रखता है उसीकी वह मदद करता है।

ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ

एक जमाने में स्त्रियों के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य था। जिस तरह पुरुष
ब्रह्मवादी हो गये हैं उसी तरह स्त्रियाँ भी ब्रह्मवादिनी हो गयी हैं।
स्त्रियों के कुछ सूक्त भी वेद में आते हैं। पहले स्त्रियों को वेदाभ्यास का
अधिकार था। अब स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं दिया जाता
है परन्तु वेद में अम्भृणी ऋषि-कन्या का एक सूक्त है। ऐसी ब्रह्मवादिनी
स्त्रियाँ हो गयी हैं जिनके सूक्त भी वेद में बहुत प्रसिद्ध हैं। स्त्रियाँ
परमेश्वर के साथ इतनी एकरूप हो गयी थीं कि उनका गौरव करते समय
वे कहती हैं कि परमेश्वर की कृति मेरी ही कृति है। उन्होंने भाषा का

कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरे आश्रय में रहते हैं परन्तु वे जानते नहीं हैं। वे सब मेरा आधार लेकर ही काम करते हैं।

ईश्वर के साथ एकरूप होकर, ईश्वर का सारा कर्तृत्व है ऐसा मानकर वह वर्णन करती है कि "मैं जिन्हें ऊँचा चढ़ाना चाहती हूँ उन्हें चढ़ाती हूँ जिन्हें ऋषि बनाना चाहती हूँ उन्हें ऋषि बनाती हूँ। परमेश्वर का कर्तृत्व मेरा कर्तृत्व है।" वे परमेश्वर का रूप लेकर बोलती हैं।

आज स्त्रियों का स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त

आज ऐसी स्त्रियाँ लुप्तवत् हो गयी हैं। आज किसी स्त्री का प्रभाव समाज पर पड़ता हो ऐसा नहीं दीखता। आज उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं रह गया है। आज वे स्वतन्त्र रूप से बोलती ही नहीं हैं। इसीलिए किसीकी पत्नी किसीकी बहन के नाते ही उनका परिचय दिया जाता है। आज स्त्रियों को कुछ सुविधाएँ दी जाती हैं। स्कूल में वे अध्यापिका बनती हैं दफ्तरों में काम करती हैं कानून से पुरुष की बराबरी का हक उन्हें मिलता है। स्कूल में भी वे पढ़ सकती हैं। पुरुषों के साथ बराबरी से काम कर सकती हैं। आज तो वे सिगरेट भी पी सकती हैं। इतने सब अधिकार उन्हें भले ही मिल गये हों परन्तु इनसे उनका उद्धार नहीं होनेवाला है। उनका उद्धार तभी होगा जब वे आध्यात्मिक अधिकार प्राप्त कर सकें। यह अधिकार हिन्दू-धर्म में ही नहीं दूसरे धर्मों में भी बाइबिल में भी माना है कि स्त्रियों के माथे पर पुरुष और पुरुषों के माथे पर परमेश्वर है। याने स्त्री का सीधा सम्बन्ध परमेश्वर के साथ नहीं है। परम्परा से ही बीच में एक एजेन्सी लेकर ही स्त्री परमेश्वर के पास पहुँच सकती है। यह बात ख्रिस्ती-धर्म में भी है, हिन्दू-धर्म में भी है। हिन्दू-धर्म में तो पत्नी पति के हाथ से हाथ मिलाती है, तो उसके हाथ से भी धार्मिक कार्य हो गया ऐसा माना जाता है। याने ईश्वर के साथ रिश्ता जोड़ लिया। अब इतना वहाँ से जायगा जहाँ वह रिश्ता भी जायगा।

इस तरह पुरुषों के इंजन के साथ स्त्री का डिब्बा जोड़ दिया गया है। डिब्बे में चाहे समस्त बड़े अंगूर भरे हों और इंजन में चाहे कायला हो तो भी इंजन तो इंजन ही है। वह डिब्बे को अपनी गति के साथ खींचता है और इंजन की गति के आधार पर ही डिब्बे की गति निश्चित होती है। इसी तरह कोई स्त्री मामी के साथ कोई कुम्भ के साथ जोड़ी जाती है और उसे सहगति मिलती है। स्वतन्त्र गति उसे नहीं है। उसकी गति दूसरे पर ही अवलंबित है।

स्त्रियों का उद्धार कैसे हो?

अभी तो स्त्रियों को मतदान का अधिकार मिला है पर उसमें भी बहुत-सी स्त्रियाँ अपने पति से पूछकर वोट देती हैं। यह अधिकार उन्होंने दूर नहीं किया है, उन्हें मिला है। दूसरे देशों में स्त्रियों को इस तरह अधिकार नहीं है। इसलिए यह दिया हुआ नहीं मिला हुआ अधिकार है। लेकिन अधिकार तो प्राप्त करना होता है इसलिए स्त्रियों को भले ही मतदान का अधिकार मिला हो पर उससे अधिकार नहीं मिलता। यह मेरा अधिकार है और इससे मैं कुछ कर सकती हूँ ऐसा भास भी उन्हें नहीं होता। स्त्रियाँ जब विद्यावान् बनेंगी और आध्यात्मिकता से सम्पन्न होंगी शास्त्र में परिवर्तन करनेवाली होंगी तभी उनका उद्धार होगा। तब शास्त्र में स्त्री-पुरुष का कोई भेद न होगा। वे जब ऐसा नया शास्त्र बनायेंगी तब मानव-धर्म का भी उद्धार होगा। आज तो शास्त्र बनानेवाले शंकराचार्य बादरायण आदि पुरुष ही दीखते हैं, किन्तु ऐसा परिवर्तन करनेवाली जब स्त्री निकलेगी और वह मानवता का शास्त्र रचेगी तब स्त्री का और मानवता का—दोनों का उद्धार होगा।

सोलवा (बड़ौदा)
१८ १ '५८

अपना हक पाने का तरीका

संन्यास ब्रह्मचर्य परिव्रज्या लेने की इजाजत हो तो भी हमारी स्त्रियाँ संन्यासिनी बनेंगी ऐसी बात नहीं। आज पुरुषों को इजाजत है तो भी हमारे पुरुष संन्यासी थोड़े ही बनते हैं। किन्तु इजाजत न होना एक 'डिसएबिलिटी' (अपात्रता) होना प्रगति के लिए रुकावट पैदा करता है। हिन्दू-धर्म में पहले ऐसा नहीं था। पर बीच में माना गया कि कलियुग में संन्यास सबके लिए वर्जित है। इस पर प्रहार शंकर-सम्प्रदाय से हुआ। शंकराचार्य के गुरु संन्यासी थे। वे पहले गृहस्थाश्रमी थे और बाद में उन्होंने संन्यास लिया। ब्रह्मचर्य में से ही संन्यासी होने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपनी माँ से संन्यास लेने की इजाजत माँगी। माँ इजाजत नहीं देती थी पर आखिर उसे देनी पड़ी। आज हम शंकराचार्य का अत्यन्त गौरव गाते हैं। हिन्दू-धर्म पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर शंकराचार्य का ही हुआ है।

अन्त तक माफी नहीं माँगी

शंकराचार्य संन्यास लेकर निकले और उत्तर में घूम रहे थे तो उन्हें माता का स्मरण होने लगा। उन्होंने सोचा कि स्मरण हुआ है इसका मतलब यह है कि माँ मुझे बुला रही है। इसलिए वे दक्षिण की ओर वापस चल पड़े। घर पहुँचे तो उनकी माता की मरने की तैयारी थी। माँ को भगवान् का दर्शन होना चाहिए, इसलिए उन्होंने कृष्णाष्टक बनाया और माँ के मुँह से उसका उच्चारण कराया। उसकी अन्तिम पंक्ति का उच्चारण होते ही माँ को भगवान् का दर्शन हुआ ऐसी कहानी है। माँ ने अपने लड़के को संन्यास लेने के लिए इजाजत दी थी और कलियुग में तो संन्यास वर्जित माना गया था इसलिए उनके समाज की तरफ से यानी नम्बूद्री ब्राह्मणों की तरफ से उनका बहिष्कार था जैसे क्रिश्चियन का पोप की तरफ से बहिष्कार था या जैसे गांधीजी हिन्दू-धर्म के वैरी समझकर

मारे गये। बहिष्कार के कारण माँ की श्मशान-यात्रा के लिए ब्राह्मणों में से एक भी मनुष्य नहीं आया। जाति-भेद था, इसलिए दूसरी जातिवाले तो आ ही नहीं सकते थे। आखिर शंकराचार्य ने तलवार से लाश के तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा ले जाकर जलाया। वे अत्यंत प्रखर ज्ञानी थे। ऐसे मौके पर भी वे पिघले नहीं। अगर वे माफी माँगते तो ब्राह्मण श्मशान-यात्रा के लिए आते, परन्तु उन्होंने माफी नहीं माँगी।

हक पाने का सही तरीका

आज तो शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबूद्री ब्राह्मणों में उनकी स्मृति म जलाने के पहले लाश पर तीन लकीरें खींची जाती हैं। परन्तु उस जमाने में समाज इतना कठोर था कि माँ की लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया। फिर भी शंकराचार्य ने समाज पर कोई आक्षेप नहीं किया। उनके ग्रंथो म कहीं भी कटुता नहीं है। उत्तम सुधारक का यही लक्षण है। शंकराचार्य को संन्यास का हक प्राप्त करने के लिए इतना करना पड़ा। इसी तरह एक एक हक प्राप्त करना होता है।

स्त्री-पुरुष-समानता का हक कैसे मिले ?

स्त्री-पुरुष की समानता का हक भी ऐसे ही प्राप्त करना होगा। स्त्रियाँ अगर पुरुषों की बराबरी में बीड़ी पीना चाहें, तो वह हक उन्हें आसानी से मिल सकता है, किन्तु वे संन्यास, ब्रह्मचर्य, परिव्रज्या या मोक्ष का हक चाहती हैं, तो कोई ज्ञानवान्, प्रखर वैराग्यसम्पन्न शंकराचार्य जैसी तेजस्वी स्त्री निकलेगी, तभी वह हासिल होगा। बाबाजी के या और किसीके देने से वह हक हासिल न होगा।

ब्रह्मपालेयम्
११-१-'५६

परिश्रम करनेवाले को हम नीचा समझते हैं। उन्हें किसी प्रकार की छुट्टियाँ नहीं होतीं। मेहतर को अगर एक दिन की भी छुट्टी दें तो सारा गाँव गन्दा हो जायगा। इतना वो उपकारी है, उसे हम नीच मानते हैं। उसे साफ रहने के लिए साबुन आदि भी नहीं देते। न उसकी इज्जत है, न प्रतिष्ठा है, न सम्मान है। मेहतर माने क्या? मेहतर माने 'महत्तर'। ऐसा जो महत्तर है, उसे हमने नीच माना। महत्तर को तो नीच माना ही पर जननी जो माता है, उसे भी हमने नीच माना।

माँ का गौरव

शास्त्रों में आया है, दस उपाध्याय के बराबरी में एक शिक्षक, सौ शिक्षकों की बराबरी में एक पिता और हजार पिताओं से भी बढ़कर एक माता है। माता का ऐसा गौरव किया है। यह तो शास्त्र की बात है, पर व्यवहार में हम स्त्रियों को हीन मानते हैं। स्त्रियाँ खेत पर मजदूरी के लिए जाती हैं तो उन्हें मजदूरी कम देते हैं। स्त्रियों को तो ज्यादा देनी चाहिए, क्योंकि उन्हें घर का भी सब देखना होता है। बच्चों का लालन-पालन करना होता है। ज्यादा तो नहीं ही देते, बराबरी का भी नहीं देते। हर जगह स्त्रियों को कम मजदूरी दी जाती है और स्त्रियों को भार समझते हैं। स्त्रियाँ तो रात-दिन काम करती हैं, फिर भी उनका भार लगता है, क्योंकि काम की प्रतिष्ठा ही नहीं है।

कहते हैं स्त्रियाँ उत्पादन का काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं। हम तो रसोई क्या है यह समझते ही नहीं। रसोई उत्पादन का काम नहीं तो क्या बढ़ई का काम उत्पादन का है? बढ़ई क्या

करता है ? काठ लेता है और उससे नयी चीज बनाता है। वैसे ही स्त्री आटा लेकर रोटी बनाती है। अगर नयी चीज पैदा करने को उत्पादन कहो तो ब्रह्मदेव के सिवा उत्पादन करनेवाला और किसीको हमें पता नहीं है। किसान परमेश्वर का पैदा किया बीज खेत में बोता है। उससे हजारगुना पाता है, तो वह भी तो परमेश्वर ही करता है। काठ की कुर्सी बनाना चमड़े का जूता बनाना माने एक चीज का दूसरी में रूपान्तर करना। हम नयी चीज नहीं बना सकते। हम खुद ही बनाये गये हैं। हम कृति हैं कर्ता नहीं। जैसे काठ की कुर्सी बनाना काठ का रूपान्तर करना है वैसे ही गेहूँ का आटा बनाना रोटी बनाना रूपान्तर है। क्या इसे उत्पादन तब समझेंगे जब हमारी माताएँ कहेंगी कि हम रोटी बनायेंगी बशर्ते कि हमें अठारह आना रोज मिले ?

माता की सेवा

माता अपने बच्चे की सेवा रात-दिन करती है। जब उसके पास कोई सेवा की रिपोर्ट माँगने जायगा तो वह क्या रिपोर्ट देगी ? माता इतनी सेवा करती है कि उसकी वह रिपोर्ट ही नहीं दे सकती। वह अपनी रिपोर्ट इस वाक्य में दे देगी 'मैंने तो लड़के की कुछ सेवा नहीं की।' मगर माता की रिपोर्ट इतनी छोटी क्यों ? इसका कारण है। माता के हृदय में बच्चे के प्रति जो प्रेम है, उसके मुकाबले उसकी कुछ भी सेवा नहीं हुई है ऐसा उसे लगता है। सेवा करने में उसे कष्ट कुछ कम नहीं सहने पड़े हैं लेकिन वे कष्ट उसे कष्ट मालूम नहीं हुए। इसलिए हम अगर सामने कोई बृहत् कल्पना रखेंगे तो मालूम होगा कि अभी तक तो हमने कुछ भी नहीं किया। इन्द्रियों का निग्रह करना यही एक साध्य हमारे सामने हो तो हम गिनती करने लग जायेंगे कि इतने दिन हुए और अभी तक कुछ फल नहीं दिखायी देता। लेकिन किसी महान् कल्पना के लिए हम इन्द्रिय-निग्रह करते हैं तो 'यह हम करते हैं

ऐसा कर्तरिप्रयोग नहीं रहता। 'विवाह किया जाता है' ऐसा कर्मणि प्रयोग हो जाता है या यों कहिये कि विवाह ही हमें करता है।

सर्वोदय विचार के बीज

एक माँ यही कहती है कि जब तक मेरे सब बच्चों को पानी नहीं मिल जाता तब तक मुझे पानी नहीं चाहिए। मान लीजिये उसके पास एक कटोरा पानी है। वह तब तक अपनी प्यास नहीं बुझायेगी जब तक कि सारे बच्चों की प्यास नहीं बुझ जायगी। अगर पानी शेष नहीं बचता है, तो वह खुद ही आन्तरिक सुख अनुभव करेगी। यही माता का मातृत्व है। इसका मतलब यही हुआ कि माता की यह भावना अपने बच्चों के साथ सर्वोदय-भावना है। लेकिन उसकी भावना उसका स्वभाव या उसका धर्म अपने बच्चों तक ही मर्यादित है, इसलिए उसकी सर्वोदय की भावना भी मर्यादित है।

मातृ-शक्ति का महत्त्व

शास्त्र में पहले कहा है कि 'मातृदेवो भव'। उसके बाद ही 'पितृदेवो भव' कहा गया है। यानी माता का स्थान पहला माना गया है। एक ऋषि ने अपना ज्ञान बतलाकर वह कैसा है यह बतलाते हुए कहा है। 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'। यानी जैसे माता पिता और गुरु बतलाते हैं वैसा वह ज्ञान है। अर्थात् बालक को ज्ञान देने का मुख्य भार माता को सौंपा गया है। मदालसा का उदाहरण प्रसिद्ध ही है। शिशु को पालने में झुलाकर उसने हिलाते-डुलाते उसे वेदान्त सिखलाया। माता में इतनी शक्ति पड़ी है। ऐसी माताएँ आनी चाहिए। घर में उनका राज चलता है यह ठीक ही है; लेकिन बाहर भी उनका अंकुश रहना चाहिए। जिनके जीवन में ऐसा अनुभव रहा उनके जीवन में एक अपूर्व ही चमक आ जाती है। शिवाजी आदि पुरुषों को बचपन में माता ने ही ज्ञान दिया और उसी समय वह उनके हृदय में

घर कर गया। श्रुति को शंकराचार्य ने 'माता' कहा है। हम लोग भी ज्ञानेश्वर को ज्ञानोबा माउली' (ज्ञानदेव मैया) कहते ही हैं। गुरु को भी मराठी में माउली (मैया) कहा जाता है। ज्ञानदेव तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं

जव प्रेमाची परिसीमा। तेव भेटे माउली आत्मा।

जहाँ आत्मा मैया की भेंट होगी जहाँ प्रेम की परिसीमा हो जाती है।

राजुरी (बीड़)
८-७-५८

ग्राम-माता बनें

घर जैसा प्रेमल वातावरण गाँव में भी निर्माण हो सकता है। बहनों को ग्राम-माता बनना चाहिए। इससे गाँव गोकुल बनेगा। दुनिया में वैकुण्ठ निर्माण होगा। जहाँ प्रेम होता है वहीं वैकुण्ठ होता है। वह किसी कोने में पड़ा नहीं रहता। वह कैलास में ही नहीं हमारे यहाँ भी है। गाँव में प्रेम का वातावरण बने तो सबके जीवन पवित्र बनेंगे। स्त्रियाँ इसे सहज समझ लेंगी। लेकिन उन्हें तो सभा में भी आने नहीं दिया जाता। परदे में कैदी की तरह बन्द रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि उनके दिल छोटे बन जाते हैं। दरअसल उनके दिल छोटे नहीं होते परन्तु घर के संकुचित वातावरण में रहने के कारण वे अपने ही बाल-बच्चों की सोचती हैं। लेकिन अब स्त्रियों के काम में ज्ञान आ जायगा तब ऐसी बात न रहेगी।

स्त्री और पुरुष दोनों के साथ-साथ चलने से समाज की गाड़ी चलती है। दोनों को मोक्ष का समान अधिकार है। स्त्रियों को मोक्ष विज्ञान ज्ञान और वे चाहें तो धन का भी अधिकार होना चाहिए। दोनों को समान अधिकार होना चाहिए। माताओं को अगर ठीक ढंग से ज्ञान मिलेगा तो सारे समाज की परिपूर्ण रक्षा होगी।

श्रेष्ठतम गुरु : माता

मुझे आज का तालीमी विषय ढाँचे में बड़ा धोखा है। लगता है उससे अशिक्षण बेहतर है। आज जो शिक्षण चल रहा है वह अगर बन्द हो जाता तो क्या माँ बाप बच्चे को इन्सानियत की तालीम न देते खेती-बाड़ी का ज्ञान सदाचार और व्यवहार का ज्ञान न देते? बच्चों को सबसे पहले माता-पिता तालीम देते हैं, उससे परे अधिक तालीम गुरु देते हैं। इसलिए गुरुओं को यह अहंकार नहीं रखना है कि हम तालीम देते हैं। माताएँ जो तालीम देती हैं वह नम्बर एक की तालीम होती है पिता जो तालीम देते हैं वह नम्बर दो की होती है और गुरु जो तालीम देता है वह नम्बर तीन की होती है। लेकिन सरकारी महकमे से जो तालीम मिलती है, उसका तो कोई नम्बर ही नहीं हो सकता क्योंकि वह तो ढाँचा है।

जब तक माँ-बाप मौजूद हैं और बिना माता-पिता के बच्चे पैदा नहीं होते तब तक बच्चों को ज्ञान मिलता रहेगा। परमेश्वर की योजना ही ऐसी बनी है कि जहाँ उसने बच्चे को मुख दी वहाँ माँ के स्तन में दूध भी पैदा किया। बच्चे को दूध के साथ माँ को पिलाने की प्रेरणा दी। इस तरह बचपन से माँ के जरिये प्रेम की तालीम दी जाती है। बच्चों को मातृभाषा सिखाने के लिए सरकार कितने करोड़ रुपये खर्च करती है? लेकिन माँ तो दूध पिलाते-पिलाते बच्चे को मातृभाषा सिखाती है। दुनियाभर के बच्चे माँ से भाषा सीखते हैं। माँ बच्चे से कहती है कि यह देखो चाँद। बच्चा सुनता है। माँ फिर उससे पूछती है कि चाँद किधर है, बताओ। यह परीक्षा होती है। बच्चा अँगुली से बताता है कि चाँद यहाँ है। बाद में वह बोलने लगता है। च च च च च और फिर 'चाँद-चाँद' कहता है। उसने पहले वस्तु ग्रहण करता है, फिर बोलता है। यह जो सारा ज्ञान है, भाषा सीखने का ज्ञान है, क्या वह विद्यालयों की शिक्षा से कम है? दो ढाई साल में शून्य में से ज्ञान पैदा किया जाता है

और माताएँ ही यह सब करती हैं। शिक्षण-शास्त्री अनुभव और निरीक्षण से कहते हैं कि बच्चे को शुरू के साल-दो साल में जितना ज्ञान मिलता है उतना ज्ञान बाद की सारी जिन्दगी में नहीं मिलता। इसलिए दुनियाभर के लोगों ने माना है कि अगर माताएँ संस्कारवान् बनीं तो दुनिया बचेगी। इसलिए सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठतम गुरु तो माता है।

—कस्तूरबा-दर्शन
१२-८ ५४

धर्मपरायण माता से ही सुनागरिक

हिन्दुस्तान में स्त्रियों ने धर्म की रक्षा अधिक की है। पुरुषों में जितने धर्म-व्यसनी मिलते हैं उससे बहुत कम स्त्रियाँ व्यसनी मिलेंगी। स्त्रियों ने दुनिया में सदाचार टिका रखा है इसीलिए उन पर बालकों की जिम्मेदारी होती है। बच्चों में अच्छी आदतें डालना और उनको साफ-सुथरा रखना स्त्रियों के हाथ में है। स्त्रियाँ अपने बच्चों को सच्चरित्र बनाएँगी तो देश को अच्छे नागरिक मिलेंगे। बच्चे तो बड़ी सम्पत्ति हैं। इससे बढ़कर कौन-सा धन है? कौशल्या की कोख से भगवान् रामचन्द्रजी निकले और देवकी की कोख से भगवान् श्रीकृष्ण। जितने भी सत्पुरुष हुए हैं उनकी माताएँ धर्मपरायण थीं। जिस घर की स्त्रियाँ भगवान् का स्मरण करती हैं सत्य का पालन करती हैं, प्रेमभाव से रहती हैं उस घर में अच्छे पुरुष पैदा होते हैं। यह बात दुनियाभर में प्रसिद्ध है।

—सर्वोदय
अप्रैल ५१

ब्रह्मचर्य भारतीय संस्कृति का एक खास विषय माना जायगा। यद्यपि दुनिया के सब समाजों में इस पर विचार हुआ है और प्रयोग हुए हैं फिर भी हिन्दुस्तान के साहित्य और संस्कृत भाषा में ब्रह्मचर्य के बारे में जितना आदर है और इस विषय पर जितना गहरा चिन्तन मिलता है उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ

'ब्रह्मचर्य' शब्द का मतलब है कि मनुष्य ब्रह्म की खोज में अपना जीवन-क्रम रखे। ब्रह्मचर्य में हमारे सामने कोई 'निगेटिव' (अभावात्मक) बात नहीं रखी गयी बल्कि 'पॉजिटिव (भावात्मक) बात रखी गयी है। उसमें किसी खास चीज से परहेज हो इतनी ही बात नहीं है बल्कि एक चीज प्राप्त करने की है। इसीको ब्रह्मचर्य कहेंगे। 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है—सबसे विशाल ध्येय अर्थात् परमेश्वर का साक्षात्कार करना। इससे कम कोई बात नहीं कही गयी है। इतना विशाल और व्यापक ध्येय है यह।

ब्रह्मचर्य की साधना क्यों ?

किसी अन्य बड़े ध्येय के लिए भी ब्रह्मचर्य की साधना की जाती है। जैसे भीष्म ने अपने पिता के लिए ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की थी और उसका अच्छी तरह से जिन्दगीभर पालन किया। आगे चलकर वे उस चीज की आध्यात्मिक गहराई में उतरे। उनकी भी आत्मनिष्ठ पुरुषों में गिनती होती है। यद्यपि उनका आरम्भ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए नहीं हुआ था

फिर भी उनका जो ध्येय था वह बड़ा ही था। अपने पिता के लिए उन्होंने त्याग किया और फिर उसका अर्थ उन्होंने गहरा सोच लिया। इसी तरह गांधीजी ने भी समाज की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य का आरम्भ किया। जब दक्षिण अफ्रीका में वे काम कर रहे थे तब उनके मन में विचार पैदा हुआ कि सेवा का कार्य करना कठिन है। सेवा के साथ-साथ कुटुम्ब की भी वृद्धि होती जाय बाल-बच्चे भी पैदा होते जायें यह नहीं चलेगा। इसलिए उन्होंने तय किया कि समाज की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। लेकिन बाद में उनका विचार उस चीज को गहराई में पहुँचा। इस तरह गांधीजी ने भी जो आरम्भ किया वह अन्तिम उद्देश्य से ब्रह्म की प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं किया बल्कि समाज-सेवा के लिए किया। वह भी एक विशाल ध्येय है। फिर उनका विचार विकसित होता गया। इस तरह किसी व्यापक और विशाल ध्येय के लिए भी आरम्भ करके फिर आगे बढ़ना होता है।

इसी तरह ब्रह्मचर्य दूसरी बातों के लिए भी होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो 'साइन्स (विज्ञान) के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। 'साइन्स' के लिए वे इतना एकनिष्ठ होते हैं कि उस हालत में गृहस्थाश्रम में पड़ना उन्हें उचित नहीं मालूम होता। वे ब्रह्मचर्य का ठीक से पालन भी करते हैं। वे विज्ञान में तन्मय हो जाते हैं और इसीलिए उन्हें ब्रह्मचर्य सधता है। तन्मयता में एक बड़ी शक्ति है। किसी एक ध्येय में तन्मय हो जाओ रात-दिन वही बात सूझे तो ब्रह्मचर्य सध सकता है। यद्यपि वह पूरा ब्रह्मचर्य नहीं है कारण जब तक 'ब्रह्मनिष्ठा' प्राप्त नहीं होती तब तक पूरा 'ब्रह्मचर्य' नहीं कहा जा सकेगा।

सर्वेन्द्रिय-निग्रह

ब्रह्मचर्य में बहुत बड़ी भावना भी अन्दर है। सिर्फ एक इन्द्रिय का निग्रह हो उससे जब काम किया जाय तो खतरा पैदा होगा। उसका अर्थ

है—सभी इन्द्रियों पर काबू पाना। इसलिए ब्रह्मचर्य में दो बातें होती हैं: (१) ध्येय उत्तम होना चाहिए और वह निरन्तर होते-होते ब्रह्म की उपासना तक पहुँच जाना चाहिए। (२) सब इन्द्रियों पर और मन पर काबू होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि इन्द्रियों को और मन को दबाना चाहिए। ब्रह्मचर्य में यह बात है कि मन और इन्द्रियों को उचित दिशा में ले जाना है। अगर दबाने के बजाय से काम चला तो मनुष्य का विकास नहीं होगा। वह तो 'निगेटिव' बात है। इसलिए सब इन्द्रियों का उचित उपयोग हो, इन्द्रियों का उचित नियमन हो, तो साधकों को बहुत लाभ होता है।

हर आश्रम में ब्रह्मचर्य

इस दृष्टि से भारत के धर्म-विचार में सुव्यवस्थित आयोजन किया गया है। मनुष्य में सर्वप्रथम गुरु-निष्ठा होनी चाहिए। उसके साथ ब्रह्मचर्य जोड़ दिया। यह हुआ पहला आश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम। फिर दूसरा आश्रम आता है गृहस्थाश्रम। उसमें पति-पत्नी की एक-दूसरे के लिए निष्ठा आती है। उसके साथ भी ब्रह्मचर्य जोड़ दिया। उसके बाद आता है, वानप्रस्थाश्रम। उसमें समाज-निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्य जोड़ दिया। और फिर अन्तिम संन्यास-आश्रम में ब्रह्मनिष्ठा होती है। उसके साथ भी ब्रह्मचर्य जोड़ दिया। इस तरह पहले से आखिर तक ब्रह्मचर्य के लिए विचार रख दिया है। विचार से ही पोषण मिलता है। बिना विचार के काम नहीं होता। हम पैदल घूमते हैं तो श्रम तो होता ही है, लेकिन हम एक उद्देश्य से घूमते हैं। इसलिए वह श्रम हमें मालूम नहीं होता। तो वह श्रम नहीं हुआ, 'तप' हुआ। नहीं तो वह ताप बन जाता। बिना विचार के तकलीफ उठायी जाय तो ताप होता है, परन्तु विचार से तकलीफ उठायी जाय तो वह आनन्ददायक ही होती है। इसलिए उसको 'तप' कहा जाता है।

जीवन की बुनियादी निष्ठा

ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु-निष्ठा की बात थी। अध्ययन करना था। उसके बाद ब्रह्मचर्याश्रम आता है। इस तरह मनुष्य के जीवन के लिए बुनियाद बन जाती है। ब्रह्मचर्य बुनियादी निष्ठा है। आजकल बुनियादी तालीम की बात की जाती है। उसका मतलब है कि जो चीजें सारे जीवन में काम आती हैं जैसे—उद्योग वगैरह उसकी बुनियाद पक्की हो। परन्तु ब्रह्मचर्य इन सबसे बड़ा गुण है। यह ऐसा गुण है, जिससे मनुष्य को नित्य मदद मिलती है और जीवन के सब प्रकार के खतरों में सहायता मिलती है। इसलिए बुनियादी तालीम में यही व्यवस्था की जाय कि बच्चों में सर्व प्रथम ब्रह्मचर्य की निष्ठा पैदा हो।

अध्ययन-काल समाप्त होने के बाद गृहस्थाश्रम आता है। उसमें पति पत्नी की परस्पर निष्ठा और केवल सन्तान के हेतु से मिलना यह बात आती है। आजकल दुनिया में यह बात चलती नहीं है, परन्तु लोगों को अगर यह विचार जँच जाय तो चल सकती है। इस तरह गृहस्थाश्रम का आधार भी ब्रह्मचर्य होता है। सन्तान की वासना के साथ सन्तान की सेवा भी आ जाती है और उसके साथ सन्तान की पूजा अथवा धर्म बनता है। फिर अतिथि-सेवा भी आती है। ये सब साधन ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक हैं। गृहस्थाश्रम भी थोड़े ही वर्षों के लिए होता है। इस तरह ब्रह्मचर्याश्रम बाद में थोड़े समय के लिए गृहस्थाश्रम और उसमें भी ब्रह्मचर्य के लिए अवकाश और उसके बाद वानप्रस्थाश्रम ऐसी योजना बनायी गयी थी। परन्तु दुःख की बात है कि आज वह योजना नहीं रही है।

हिन्दुस्तान के धर्म की यह जो खास बात थी वह अब नहीं रही है। अब तो सिर्फ थोड़ा भक्ति-मार्ग रहा है और वह सब धर्मों में हो रहा है। यह अच्छा ही है। उसीके आधार पर हम आगे बढ़ेंगे। परन्तु भक्ति मार्ग तो एक 'न्यूनतम कार्यक्रम' है। आध्यात्मिक जीवन का वह आधार

है। उस बुनियाद पर काफी बड़ा मकान खड़ा करता है। आज तो हिन्दू धर्म का मकान गिर गया है। हिन्दू-धर्म की फिर से स्थापना करनी है। उसमें ब्रह्मचर्य एक बहुत बड़ा विचार है।

इसलाम का आदर्श

इसलाम में यह विचार रखा है कि गृहस्थ-धर्म ही पूर्ण आदर्श है। बाकी के आदर्श जैसे ब्रह्मचारी का गौण आदर्श है। जैसे भगवान् ईसा तो आदरणीय थे ब्रह्मचारी थे। परन्तु उनका जीवन पूर्ण जीवन नहीं माना जायगा। मुहम्मद का आदर्श पूर्ण है। वे गृहस्थ थे। जैसे ब्रह्मचारी को 'एक्सपर्ट' (विशेषज्ञ) जैसा माना जायगा। विशेषज्ञ एकांगी होते हैं परन्तु समाज को उनकी भी जरूरत होती है। इसी तरह जिन्होंने शुरू से आखिर तक ब्रह्मचारी का जीवन बिताया उनका आदर्श पूर्ण नहीं है। पुरुषोत्तम पूर्ण आदर्श तो गृहस्थ ही है। स्त्री और पुरुष दोनों के लिए गृहस्थ का ही आदर्श है। इस दृष्टि से मुसलमानों का चिन्तन चलता है।

वैदिक आदर्श

वैदिक धर्म में दूसरी ही बात है। यहाँ पर ब्रह्मचारी को ही आदर्श माना गया है। बीच में जो गृहस्थाश्रम आता है, वह तो वासना के नियमन के लिए है। इस तरह नियमन की एक सामाजिक योजना बनायी गयी थी जिससे मनुष्य ऊपर की सीढ़ी क्रम-से-क्रम चढ़ सके। परन्तु उसमें सर्वोत्तम आदर्श तो ब्रह्मचारी का ही था।

स्त्री-पुरुष में भेद

बीच के जमाने में स्त्री-पुरुष में भेद माना गया जिससे हिन्दू-धर्म की दुर्दशा हो गयी। पुरुष को तो संन्यास का अधिकार रहा लेकिन स्त्री को उसका अधिकार नहीं रहा। इसलिए स्त्री का गृहस्थाश्रमी बनना ही

चाहिए, ऐसा माना गया। अगर वह गृहस्थाश्रमी नहीं बनती तो अधम होता है। अधर्म का यह आरोप सहन करते हुए भी कुछ ऐसी स्त्रियाँ निकलीं जो समाज के खिलाफ खड़ी होकर ब्रह्मचारिणी रहीं। जैसे मीराबाई और महाराष्ट्र की मुक्ताबाई। लेकिन समाज ने तो उन पर अधम का आरोप किया ही। उन्होंने अपने लिए ब्रह्मचर्य का आग्रह रखा लेकिन समाज ने उनके ब्रह्मचर्य का हक नहीं माना।

दोष का संशोधन जरूरी

इस तरह बीच के जमाने में यह एक बहुत बड़ा दोष पैदा हुआ। अब इस जमाने में उसका संशोधन करना जरूरी है। एक पैसे पर भी उसका पालन करनेवाले कम ही होंगे। परन्तु कम हों या ज्यादा स्त्री के लिए ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं है, यह बात ही गलत है। उससे आध्यात्मिक 'डिसएबिलिटी' (अपात्रता) पैदा होती है। अगर कोई व्यावहारिक अपात्रता होती तो उसमें सुधार करना सम्भव था। लेकिन आध्यात्मिक ही अपात्रता हो तो वह बड़े दुःख की बात है। हिन्दुस्तान में बीच के जमाने में जो तबोहानि हुई उसका यह भी एक कारण है कि स्त्रियों को ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं रहा।

स्त्री के बारे में गलतफहमी

अक्सर यह माना जाता है कि स्त्रियों में काम-वासना ज्यादा होती है, लेकिन यह खयाल गलत है। स्त्री को प्रसूति के परिणाम भोगने पड़ते हैं और बच्चों के लिए बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है। तो जिसमें इतनी तकलीफ उठानी पड़ती है, उसके प्रति उसके मन में अधिक वासना हो यह सम्भव नहीं दीखता। एक दिन मैं मन्दिर देखने गया था। वहाँ देवकी माता का चित्र था। उसे प्रसूति की वेदनाएँ हो रही हैं ऐसा उस चित्र में दिखाया गया था। जब उसकी तकलीफें मैंने देखीं तो मुझे लगा कि

जब इतनी तकलीफ हो रही है, तो भगवान् सन्तान ही न दे। मुझे कई दफा लगा कि मेरा शरीर तो कमजोर है, अगर मैं स्त्री होता और ऐसी हालत में मुझे बच्चे पैदा होते तो मैं कैसे टिक सकता? लेकिन माना जाता है कि स्त्री को सन्तान की इच्छा रहती है। स्त्री सृष्टि में मातृमयी है। इसलिए यह हो सकता है कि स्त्री को प्रथम सन्तान की इच्छा हो। बिल्कुल ही सन्तान-विरहित रहने का आदर्श शायद पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक कठिन मालूम होता हो। परन्तु एक सन्तान हो जाने के बाद स्त्री को वासना नहीं रहती होगी, क्योंकि उसे सन्तान होते समय काफी तकलीफ उठानी पड़ती है। यह मेरा अपना विश्लेषण है। मैं नहीं जानता कि यह कहाँ तक सही है।

तात्पर्य यह कि स्त्री के बारे में यह गलतफहमी फैलायी गयी है कि उसे काम-वासना अधिक होती है। इसी गलतफहमी का परिणाम है कि स्त्री पर अंकुश रखा जाता है। इसका परिणाम हिन्दुस्तान में यह हुआ कि कहीं अत्याचार हो जाता है, तो स्त्रियाँ भी पुरुषों का बचाव करती हैं। जरा गहराई से देखो तो मालूम हो जायगा कि इसका मतलब है कि स्त्री के मन में पुरुष के लिए आदर है। पुरुष कोई गलत काम करता है तो बहुत बड़ी बात है, ऐसा उसे नहीं लगता। अगर कोई स्त्री बीड़ी पीती है तो उसको गलत माना जाता है, लेकिन पुरुष पीता है, तो गलत नहीं लगता। मुझे भी स्त्रियों को बीड़ी-सिगरेट पीते देखकर बड़ा भयानक मालूम होता है। पर ऐसा क्यों होना चाहिए? स्त्री-पुरुष समान ही तो हैं।

स्त्री की अपात्रता मिटे

हिन्दुस्तान में स्त्री के लिए आध्यात्मिक सम्पन्नता की भावना है और स्त्री के मन में भी यही भावना है। इसलिए कोई व्यभिचारी पुरुष निकले तो स्त्रियाँ ही उसे मुआफ कर देती हैं। वे कहती हैं, अरे पुरुष ही है

यह ! इसको स्त्री का 'सुपीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स' (महत्त्वभावना) कहा जा सकता है। लेकिन स्त्रियों के लिए जो गलत मान्यता हुई है उसे हटाना चाहिए। उसे हटाये बिना समाज का उद्धार न होगा। मैंने तो कई बार कहा है कि जब तक शंकराचार्य जैसी कोई स्त्री नहीं निकलेगी जो कि पुराने शास्त्रों की गलतियाँ दिखायेगी, शास्त्र फाड़ डालेगी तब तक स्त्रियों का उद्धार नहीं होगा। लेकिन शास्त्रों की गलतियाँ बताने का काम तो वही कर सकती है जो अत्यन्त तेजस्वी, वैराग्यशील और ज्ञाननिष्ठ हो। तब असमानता नष्ट होगी और तभी स्त्री को ब्रह्मचर्य-पालन का वास्तविक हक प्राप्त होगा। पर, आज तो ब्रह्मचारिणी स्त्री की समाज में निन्दा ही की जाती है।

अमृत के नाम पर विष

मैंने देखा है कि विषय-वासना को प्रेरणा देनेवाला जो शृंगारिक साहित्य है, उससे मनुष्य जितना गिर सकता है, उससे भी अधिक गिर सकता है उस साहित्य को पढ़ने से जो कि वासना से बचने के लिए लिखा गया है। इतना गन्दा साहित्य होता है वह !

माँ के सामने सुरक्षितता

होना तो यह चाहिए कि ब्रह्मचारी के सामने यदि कोई स्त्री आती है तो वह अपने को ज्यादा पवित्र और सुरक्षित महसूस करे। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब सामने कोई स्त्री आती है तो लगता है कि मेरी माता ही आ गयी। इसलिए मुझे अधिक सुरक्षा मालूम होती है, क्योंकि माता साथ रही हो तो हम गन्दा काम नहीं करते। इसी तरह ब्रह्मचारी को स्त्री के सान्निध्य में अधिक सुरक्षितता महसूस होनी चाहिए। पर ब्रह्मचारी को स्त्री के सम्पर्क से बचना चाहिए, यह समाज ही मान्य है। उसके कारण कृत्रिम मर्यादाएँ डाली जाती हैं।

नहीं सकता है।" फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि 'तेरी इस पर क्या राय है? तू तो शास्त्र बहुत अच्छी तरह जानता है।" मैंने कहा कि 'आपने जिस दृष्टि से यह वाक्य नापसन्द किया उस दृष्टि से तो वह नापसन्द करने के लायक है, क्योंकि लक्ष्मण ब्रह्मचारी था और उसने सीता का मुख ही न देखा था। अगर ब्रह्मचारी ऐसी मर्यादा से रहे कि वह स्त्री का मुख नहीं देखे तो वह गलत बात है। परन्तु मैंने इस वाक्य का दूसरा अर्थ देखा है। इसमें तो लक्ष्मण ने सीता के चेहरे की तरफ नहीं देखा, इतना ही नहीं है। इसमें तो रामजी उनसे पूछ रहे हैं, इसका मतलब है कि रामजी भी उन गहनों को नहीं पहचानते थे। मतलब पति ही पत्नी के गहने नहीं पहचान रहा है!

इससे मालूम है कि क्या सीता और क्या राम दोनों अनासक्त थे। दोनों एक-दूसरे की आकृति नहीं देखते थे, बल्कि एक-दूसरे को आत्मा के रूप में ही देखते थे। लेकिन लक्ष्मण तो सीता के चरणों की सेवा करता था, पाद-वन्दन करता था। इसलिए वह उपासना के तौर पर चरणाकृति को देखता था तो उसमें पैर के गहने भी आ जाते थे। वह गहनों के साथ की चरणाकृति को मूर्ति समझकर उपासना करता था……। जब मैंने यह अर्थ बताया तो बापू ने कहा कि 'तू तो शास्त्र-वचनों का बहुत अच्छा बचाव करना जानता है।' वे बोले कि 'यही सही है। और इतना भी यह चाहिए कि जहाँ तक हो सके शास्त्र-वचनों का अच्छा अर्थ ही करना चाहिए। इसलिए जहाँ ब्रह्मचारी के मन में यह भावना आयी कि सामने की स्त्री आयी है, उसे मैं नहीं देख सकता, तो वह उसकी कमी मानी जायगी।

अतिपरिचय न हो

मैं तो मानता हूँ कि पुरुष-पुरुष के बीच भी अधिक शारीरिक परिचय होना ठीक नहीं है। परिचय तो मानसिक होना चाहिए। शारीरिक

परिचय की केवल सेवा के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही होना चाहिए। हम देखते हैं कि एक पुरुष नाहक दूसरे पुरुष मित्र के गले में हाथ डालकर चलते हैं। यह हमें पसन्द नहीं आता है।

यह वात्सल्य नहीं मोह है

एक दफा किसीने मेरे एक मित्र की कहानी सुनायी। मेरे मित्र ने गाय का एक सुन्दर बछड़ा देखा। उससे रहा नहीं गया और उसने प्रेम से उस बछड़े को उठा लिया। उसने तो मेरे मित्र के वात्सल्य का वर्णन करने के लिए यह कहानी सुनायी। लेकिन मैंने कहा कि इसमें क्या वात्सल्य है? सुन्दर बछड़ा देखा और उठा लिया! यह गन्दा होता तभी तो वात्सल्य की परख थी। क्योंकि प्रेम से उसे साफ करने के लिए वात्सल्य आवश्यक था। अगर वह किसी गन्दे बछड़े को देखते ही उठा ले और प्रेम से साफ करे, तब तो हम उस प्रेम को समझेंगे। लेकिन अगर आप किसी सुन्दर वस्तु को देखते ही फौरन उठा लेते हैं, तो उसको आप भोग रहे हैं। उसमें सेवा नहीं है। मैं मानता हूँ कि अगर कोई बच्चा गमगीन हुआ हो तो उसे उठा लेना चाहिए, उसे आश्वासन दिलाना चाहिए। लेकिन उस गाय के सुन्दर बछड़े को तो नाहक उठा लिया। उसमें क्या भाव था? यह ठीक है कि हमारे उस मित्र के भी मन में वात्सल्य या प्रेम था परन्तु उस प्रेम का दर्शन गौण है। इसलिए सेवा के लिए ही शरीर के साथ सम्बन्ध होना चाहिए। शरीर-परिचय की जो एक सामान्य मर्यादा है, वह न सिर्फ स्त्री और पुरुष के बीच होनी चाहिए, बल्कि पुरुष-पुरुष के बीच और स्त्री स्त्री के बीच भी वही मर्यादा होनी चाहिए। यह दर्शन ही गलत है कि स्त्री और पुरुष में भेद किया जाय।

लिङ्ग-भेद अनावश्यक

हमने तो देखा है कि जिन लोगों में स्त्री-पुरुषों के बीच अधिक सुगमता

है यहाँ पर अधिक पवित्रता है। मलाबार में तो भाषा में भी लिंग-भेद नहीं है। हिन्दी में 'मैं जाता हूँ' 'मैं जाती हूँ' इस तरह का भेद हरएक वाक्य में आता है। बंगला में भी लिंग भेद नहीं है। यह बहुत अच्छी बात है। लिंग भेद न होने के कारण बंगला किताबों का हिन्दी में तरजुमा करना भी कठिन हो जाता है। क्योंकि यहाँ पर (बंगला में) स्त्री-पुरुषों के प्रेम का जो पावित्र्य होता है, अनुवाद में वह नहीं आ सकता। वास्तव में तो उसका तरजुमा ही नहीं हो सकता। क्योंकि यहाँ पर जो इम्पर्सनल' (अशरीरी) प्रेम है, उसे अनुवाद में नहीं लाया जा सकता। लेकिन हाँ बंगला में संस्कृत का अनुकरण करके विशेषणों में लिंग भेद लाया गया है। यह गलत काम किया गया है। क्रियापद में लिंग-भेद नहीं है यह अच्छी बात है। वास्तव में इन भेदों की कोई जरूरत नहीं है। संस्कृत के क्रियापदों में भी यह भेद नहीं है और अंग्रेजी' में जो He (वह—पुरुष) और She (वह—स्त्री) चलता है वह भी बंगला में नहीं है। यह अच्छी बात है। इससे वातावरण पवित्र होता है।

मर्यादा स्त्री-पुरुष की ही नहीं, सबकी

स्त्री पुरुषों का भेद तो हम आकृतिमात्र से ही पहचानते हैं। अन्दर की आत्मा तो एक ही है। मनुष्य ने माना है कि दोनों के बीच कुछ मर्यादाएँ होनी चाहिए। लेकिन यह कोई सर्वोत्तम वस्तु नहीं है। होना तो यह चाहिए कि दोनों खुले दिल से एक-दूसरे के सामने आयें। वैसे शरीर-सम्पर्क की एक सर्वमान्य मर्यादा हो। पुरुष-पुरुष के बीच भी ज्यादा सम्पर्क न हो। योगशास्त्र में इसे 'शौच' कहा गया है। योगशास्त्र में दो बातें बतायी हैं (१) यम-अहिंसा सत्य आदि और (२) शौच—स्वच्छता की भावना। इसका मतलब है कि अपने शरीर के लिए घृणा पैदा हो। 'स्वाङ्गजुगुप्सा'—ऐसे गन्दे शरीर को लेकर हम दूसरों

नजदीक कैसे जायें यह विचार होता है। जैसे अपना शरीर है हम दूसरा के नजदीक न ज्यादा नहीं जायेंगे। इस तरह अपने शरीर के लिए जो अलगपन भाव होता है वह एक रक्षण होता है जिससे कि नाहक सम्पर्क नहीं होता। इसलिए हम तो मानते हैं कि स्त्री-पुरुष के बीच की मर्यादा मानने की कोई जरूरत नहीं है। जो मर्यादा माननी है वह सबके लिए समान हो।

स्त्री को 'देवी' मानना गलत

अब मैं एक तीसरी बात कहूँगा जिसका समाजशास्त्र के साथ सम्बन्ध है। आजकल समाज में मुझसे कुछ लोगों में अधिकाधिक कृत्रिमता आ गयी है। इसलिए स्त्री के लिए ज्यादा आदर दिखाना जिसे 'दाक्षिण्य भाव' कहते हैं चलता है। स्त्री को 'देवी' कहा जाता है। इस तरह एक बाजू से तो स्त्री के लिए घृणा और तिरस्कार होता है, अवगणना होती है और दूसरी तरफ से स्त्री के लिए अधिक भावना होती है। पुरुष अपने को स्त्री का सेवक मानता है। बीच के जमाने में यूरोप के सरदारों में जो 'शिव-लरी' (वीरता) की बात चली, वह इसीमें से निकली है और इसीके परिणामस्वरूप आज के समाज के 'एटीकेट' (शिष्टाचार) के नियम बने हुए हैं। लेकिन हम मानते हैं कि इसमें विषय-वासना भरी ही है। जैसे स्त्री के लिए कोई अवमानना रखना गलत है, वैसी तरह स्त्री के लिए अधिक भाव या ऊँची भावना रखना भी गलत है। होना तो यह चाहिए कि आत्मा में तो स्त्री और पुरुष का भेद नहीं है, यह भेद तो शरीर का है, इसका भान ही जाय। यह भान होने पर वासना के निमूल होना आसान हो जायगा।

सेवकों का कर्तव्य

सेवकों के लिए पाँच व्रतों की बात बतायी गयी है। जैसे—अहिंसा, अपरिग्रह आदि। इन व्रतों के पालन के लिए हम समाज में किस तरह

का जीवन बितायें इस पर सोचना होगा। मैंने माना है कि जिनको इस कला की शक्ति का भान है वे ब्रह्मचर्य का सही खयाल करेंगे कि मनुष्य में जो वीर्य-शक्ति होती है वह उत्पादन के लिए है। इसीलिए मनुष्य की वासना जितनी ऊँची चढ़ती उतना ही वह नीचे गिरता। अक्सर कहा जाता है कि जो प्रतिमा का निर्माण का काम करते हैं उनमें स्थूल निर्माण की सन्तान निर्माण की इच्छा कम होती है, इसलिए निर्माण-कार्य एक पवित्र कार्य है। निर्माण ऊँची चीजों का करना चाहिए। जो ऐसा करेगा वह नीची वस्तु को छोड़ देगा। बुद्धि की प्रतिमा ज्योति के समान होती है लेकिन अन्दर का जो तेल है जिसके आधार से ज्योति जलती है वह है—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य से बुद्धि की प्रतिभा अधिक तेजस्वी होती। इसलिए जिन्हें बौद्धिक काम करना है ऊँचा चिन्तन करना है उनकी वीर्य-शक्ति का उपयोग सामान्य सन्तान निर्माण के काम में करना उचित नहीं है।

उत्तम निर्माण-कार्य करें

बुद्ध शंकराचार्य ईसा ये सब ब्रह्मचारी ही थे। उन्हें अपनी बुद्धि के लिए ऐसा कार्य मिला था जो बहुत ऊँचा था। उन्हें ऊँचे दर्जे के निर्माण कार्य से समाधान होता था इसलिए निर्माण की जो सर्वसाधारण प्रक्रिया मानी जाती है उससे वे सहज ही बच गये। अतः लेखकों के सामने कोई उत्तम निर्माण का कार्य होना चाहिए। जिन्हें समाज-रचना करनी है क्रान्ति का काम करना है उन्हें तो आसानी से ब्रह्मचर्य सधना चाहिए। हमारे सामने एक ऐसा ही क्रान्ति का काम है। हमें नया मानव बनाना है। सारा समाज बदलना है। उत्तम साहित्य का निर्माण करना है। व्यक्ति और समाज में भिन्न-भिन्न गुणों का प्रकाश करना है। इतना महान् कार्य करनेवालों का स्थूल निर्माण-कार्य में रस नहीं मालूम होगा।

मेरिया मेदिनीपुर (बंगाल)
१०-१-५५

गृहस्थाश्रम भी ब्रह्मचर्य का साधक

अगर ठीक ढंग से सोचें, तो गृहस्थाश्रम भी ब्रह्मचर्य के लिए ही है। शास्त्रकारों के बताये के अनुसार ही अगर वर्तन किया जाय तो गृहस्थाश्रम भी ब्रह्मचर्य की साधना का एक प्रकार हो जाता है। जीवन बड़ा विचित्र है। जो पहुँच गये हैं उनके लिए यह एक सीधी लकीर है और जो पहुँचे नहीं हैं उनके लिए तो यह एक टेढ़ी लकीर है। उनको टेढ़े रास्ते से जाना पड़ता है।

अनेक लड़के-लड़कियाँ खास करके लड़कियाँ ब्रह्म-विद्या के दर्शन के लिए आगे आवें ऐसी मेरी इच्छा है। ब्रह्म-विद्या में स्त्री पुरुष का भेद ही नहीं है। यह विद्या स्त्री-पुरुषों के भेद को मिटाती है। फिर भी अभी मैं इस काम के लिए बहनों की ओर आशा लगाये बैठा हूँ। इसमें पूर्व आश्रमों के लिए मैं प्रयत्न कर चुका हूँ इसलिए अभी हमारे समाज के उत्थान के लिए ऐसी महिलाएँ बहुत जरूरी हैं जिनका जीवन ही ब्रह्मविद्यामय बन जाय। यह काम मुझे अपने इस युग की आवश्यकता ही प्रतीत होती है।

इधर तो मैं यह कह रहा हूँ और उधर विवाह को आशीर्वाद दे रहा हूँ। यह आपको विचित्र-सा दीखता है लेकिन सचमुच यह विचित्र है नहीं। अनेक जन्मों के हम प्रवासी हैं। हमारा प्रवास चल रहा है हम सब एक ही मार्ग से जा रहे हैं। सर्वोत्तम मुकाम आत्मज्ञान का मार्ग तो स्वीकार कर ही लिया है लेकिन उसके साथ-साथ हमने आत्म-दर्शन का मार्ग भी स्वीकार किया है। उसमें कोई एक-आध कदम आगे है तो कोई

एक-आध कदम पीछे। रास्ते में चलते हुए ऐसा होता ही है। सब साथ-साथ चलते हैं फिर भी कहीं-न-कहीं एक-आध कदम तो आगे-पीछे रहते ही हैं। आगे-पीछे रहने पर भी सभी साथ ही रहते हैं।

एक प्रश्न

कुछ होशियारों बहनों ने एक बड़ा सुन्दर और विलक्षण प्रश्न पूछा है कि 'हम भागवत में सुनते हैं कि कृष्ण की संगति में जो गोपियाँ रहीं वे मुक्त हो गयीं तो बापूजी और आपकी संगति में जो लड़कियाँ रहती हैं उनकी सांसारिक वासना क्या होती है?'

बापू महात्मा थे मैं तो एक साधारण साधक हूँ। उससे ज्यादा कुछ समझना भी नहीं चाहता। लेकिन यह बात सही है कि बापू को ब्रह्मचर्य का अनुभव अपने ढंग से था और मुझे उसका अनुभव अपने ही ढंग से है। दोनों को ब्रह्मचर्य के लिए बहुत आदर रहा है। वे भी सत्य को प्रधान स्थान देते थे और मैं भी उसी गुण को प्रधान स्थान देता हूँ। मैं मानता हूँ कि जो कुछ सत्यनिष्ठा का अंश हमारे जीवन में उतरा होगा उसका असर पास रहनेवालों पर जरूर होगा। परन्तु भगवान् कृष्ण कहाँ और हम कहाँ?

भागवत में गाया है कि कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। इसीलिए परमेश्वर के साथ किसीकी तुलना करना योग्य नहीं है। ऐसी तुलनाएँ लोग अपने मन में करते हैं परन्तु मैं नहीं करता। बापू की तुलना ईसामसीह से की गयी है लेकिन मैं उसको पसन्द नहीं करता। ईसामसीह अपने ढंग से अद्वितीय थे। करोड़ों भक्त उनके नाम से तर गये हैं। ऐसा ही स्थान भारत में भगवान् कृष्ण का है। इधर रामजी का भी नाम चलता है। इन दिनों गौतम बुद्ध का भी नाम चलने लगा है। ये तीनों नाम परमेश्वर के हैं। सत्य प्रेम और करुणा के रूप में उनका स्मरण हम प्रतिदिन करते हैं। इसलिए इन तीनों में भी किसीकी तुलना किसीके साथ नहीं हो सकती। हमने तीनों को भगवत्-रूप में ही देखा है। कृष्ण परमेश्वर का एक

रूप ही हो गये हैं। कृष्ण के नाम से हिन्दुस्तान में असंख्य लोगों का उद्धार हुआ। मेरा भी हो जायगा। शंकर, रामानुज मध्वाचार्य वल्लभाचार्य चैतन्य ज्ञानदेव तुकाराम नरसी मेहता और मीराबाई—कितने नाम लिये जायें? वे सब कृष्ण के नाम में लीन हो गये। इसलिए परमेश्वर का उसने जो रूप सोचा उसके साथ किसी भी मानव की तुलना करना योग्य नहीं है।

इस मामले में इस्लाम का विचार बहुत अच्छा है। हिन्दुओं में और ईसाइयों में महापुरुषों के नाम भगवान् के नाम के साथ जोड़े जाते हैं। उसमें भी रुचि है। 'यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।' ऐसा गीता में कहा गया है। धनुर्धर पार्थ की क्या जरूरत थी? कृष्ण अकेले काफी थे फिर भी कृष्ण के साथ अर्जुन का नाम जोड़ दिया। भक्त को प्रधानता दी गयी है। जहाँ भक्त और भगवान् दोनों होते हैं वहीं विजय होती है ऐसा कहा गया है। परन्तु इस्लाम में बहुत स्पष्ट कहा गया है कि अल्लाह के साथ किसीका भी नाम जुड़ना नहीं चाहिए। अल्लाह के सिवा दूसरा कोई पूजनीय नहीं हो सकता। ला इलाह इल्-इल्ला इल्लाह। मुहम्मद ओ रसूल अल्लाह। मुहम्मद सिर्फ पैगंबर है यह खुदा का सन्देश देनेवाला सेवक है, वह अल्लाह का स्थान नहीं ले सकता।

उरुळी
२१-२ '४६

विवाह का प्रश्न

विवाह के बारे में माँ-बाप सलाह दे सकते हैं मदद कर सकते हैं। परन्तु विवाह तो लड़की का ही मानना चाहिए। माँ-बाप की पसन्द सहज रूप में ही लड़की को पसंद पड़ी तब तो कोई बात ही नहीं। पर यदि नहीं जँची तो माँ-बाप को दुःखी नहीं होना चाहिए। इस पर भी यदि उन्हें दुःख होता ही है उसमें लड़की का कोई दोष है, यह मानने को मैं तैयार

नहीं। केवल माँ-बाप के संतोष के लिए ऐसी बात जिसे हृदय स्वीकार न करे, कभी मान्य नहीं करनी चाहिए, कारण कि जो बात हृदय को जँचे नहीं उसे करना अपने हृदय को धोखा देना है। और हृदय को धोखा देना अधर्म है। उससे आखिर माता-पिता को धोखा देने जैसा ही तक होगा।

जिसके प्रति तुम्हारे मन में विशेष अनुराग है, परन्तु तुम्हें पक्का मालूम है कि वह तुम्हें चाहता नहीं उसके साथ विवाह करने की कल्पना तुम्हें छोड़ ही देनी चाहिए। जिस प्रकार सबके प्रति सद्भावना होनी चाहिए, वैसे ही उसके प्रति भी रखनी चाहिए। परन्तु यदि ऐसा तटस्थ भाव रखना असंभव हो और तीव्र प्रेम का अनुभव आता हो और इतने पर भी उसकी ओर से कोई अनुकूल उत्तर न मिलता हो तो शारीरिक विवाह का विचार छोड़कर उस व्यक्ति को परमात्मा का प्रतीक मानकर उसका मानसिक वर के वरण कर लेना चाहिए और ब्रह्मचर्य-व्रत से रहते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। यह सब तुम्हारे ऊपर कहाँ तक काबू होता है, मुझे मालूम नहीं। यह आत्म-परीक्षण करके तुम्हें स्वयं निश्चित कर लेना चाहिए। मेरा उत्तर स्वयं में पूर्ण है। हरएक अपनी स्थिति देखकर उसका विनियोग अपने ऊपर कर सकता है।

और भी अनेक सूचनाएँ देना चाहता हूँ। अपनी मनःस्थिति का वास्तविक ज्ञान बहुत बार मनुष्य को होता ही नहीं। वस्तु का यथार्थ दर्शन बहुत पास से भी नहीं होता और न बहुत दूर से ही होता है। थोड़े अन्तर से उसका ठीक दर्शन होता है। पास रहकर बहुत चिन्ता और चिन्तन करने से भी जो बात ध्यान में नहीं आती वही थोड़े समय बाद अपने-आप ध्यान में आ जाती है। इसलिए मानसिक व्याकुलता तो छोड़ ही देनी चाहिए।

माता सहज प्राप्त होती है, उसे चुनना नहीं पड़ता। उसी प्रकार ईश्वर की योजना में पति भी सहज प्राप्त होता है ऐसी श्रद्धा रखी जाय

तो व्याकुलता कम होगी। कारण परमेश्वर कोई शारीरिक वस्तु तो नहीं मानसिक है। सारे विश्व की ओर परिपूर्ण प्रेम से देखने को सीखने के लिए लग्न (विवाह) आदि म प्रयाण है।

हृदय के विरुद्ध कोई काम न करना। धीरज से काम को और ईश्वर पर श्रद्धा रखो। जब-जब कुछ पूछना हो खुशी से पूछना।

तुम्हारा व्यक्तिगत परिचय मुझे नहीं है। उसकी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि इस शरीर को तो भुलाना ही है।

[एक लड़की को लिखे गये पत्र से] —मराठी हरिजन
१ १ ३८

यथार्थ पातिव्रत्य धर्म

प्रश्न : आपने बहनों को चूड़ियाँ आदि न पहनने के लिए कहा है इसमें आपने पातिव्रत्य के प्रतीकों पर प्रहार किया है।

विनोबा : आपको सोचना चाहिए कि पातिव्रत्य क्या है। क्या पातिव्रत्य एकांगी वस्तु है? क्या पुरुषों को भी पत्नीव्रती न होना चाहिए? आपमें से बहुत सारे लोग पति होंगे। मुझे जरा दिखाइये अपने पत्नीव्रत के प्रतीक। मुझे तो ऐसा कुछ नहीं दीखता। पत्नीव्रत के लिए जब किसी प्रतीक की जरूरत नहीं है तो पातिव्रत्य के लिए उसकी जरूरत क्यों होनी चाहिए? इसमें सवाल पातिव्रत्य का नहीं है। सवाल यह है कि स्त्री पुरुष की दासी है या नहीं? इसे दासी मानना बिलकुल गलत खयाल है। इसका हम विरोध करना चाहते हैं। स्त्री एक स्वतन्त्र वस्तु है, एक जीव है। पुरुष में जीवात्मा जितना बलवान् है उतना ही बलवान् स्त्री में है। समझना चाहिए कि पत्नी का परमेश्वर के साथ सीधा सम्बन्ध है। क्या आप समझते हैं कि स्त्री का परमेश्वर के साथ पति की एजेंसी के मार्फत सम्बन्ध है? अगर पत्नी को एजेंसी की जरूरत है, तो पति को भी

परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए पत्नी की एजेंसी की जरूरत रहेगी।

आज स्त्रियों को नाक में, कान में छेद किये जाते हैं। उनमें गहने पहनाये जाते हैं। यह सारा ईश्वर के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव है। क्या ईश्वर चाहता तो इस तरह छेद नहीं बना सकता था? ईश्वर ने मोती को भी छेद नहीं किया। परन्तु हम समुद्र में से मोती निकालकर उसमें छेद कर देते हैं और स्त्रियों के नाक, कान में छेद करके उनमें वे मोती डालते हैं। उनके नाक, कान, गला, हाथ-पाँव आदि सबमें सुवर्ण मोती के गहने पहनाते हैं तो क्या वहाँ पूरी आकार की सोने की खान इकट्ठी करती है? स्त्रियों के सिर पर इतना सारा बोझ डालकर हम ही उन्हें 'भीरु' कहते हैं। भीरु कहने में स्त्रियों का हम गौरव समझते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों के हाथ में सुरक्षित रहनी चाहिए, ऐसा हम मानते हैं। यह धर्म-विचार नहीं है। धर्म कहता है कि हरएक में आत्मा है। परमेश्वर का वर्णन करते हुए उपनिषदों में कहा है कि 'तू ही स्त्री है, तू ही पुरुष है।

कुछ लोग समझते हैं कि पुरुष पुरुषत्व का प्रतिनिधि है और स्त्री प्रकृति की प्रतिनिधि है। सांख्य ने कहा है कि पुरुष और प्रकृति ये दो तत्त्व हैं यानी माया और महेश्वर। उसमें पुरुष महेश्वर का प्रतिनिधि है, स्त्री प्रकृति की। प्रकृति जड़ होती है। यानी स्त्री जड़ की प्रतिनिधि है और पुरुष चेतन का प्रतिनिधि है। यह सर्वथा गलत विचार है। जितना आत्मतत्त्व पुरुष में मौजूद है, उतना ही स्त्री में है और जितना प्रकृति का जड़ अंश पुरुष में है, उतना ही स्त्री में है। परन्तु यह एक बड़ी भारी गलतफहमी हिन्दुस्तान के तत्त्वज्ञान में हुई है। वे समझते हैं कि पार्वती और परमेश्वर कहने में परमेश्वर यानी पुरुष और पार्वती यानी स्त्री। इस तरह से तत्त्वज्ञान में ही गलत विचार आया है। अगर परमेश्वर का

प्रतिनिधि पुरुष है, तो उसकी ही प्रतिनिधि स्त्री है। पार्वती का अंश पुरुष में भी है और स्त्री में भी है। शरीर है पार्वती जो स्त्री पुरुष दोनों का है, और स्त्री और पुरुष दोनों के अन्दर प्राण है, वह है परमेश्वर। परन्तु हमारे यहाँ नासमझी के कारण स्त्री का स्थान उत्तरकाल में गौण माना गया। हम इस पर प्रहार करना चाहते हैं। इसमें पातिव्रत्य पर प्रहार हो जाता है, तो हम लाचार हैं।

आज पातिव्रत्य का यह अर्थ माना गया है कि पति भला-बुरा जैसा भी हो उसमें पत्नी को लीन हो जाना है। स्त्री का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। लेकिन पतिव्रता का अर्थ पति के व्रत में योग देना है। पति शराब पीनेवाला हो तो उसके शराब पीने में मदद नहीं देना है, बल्कि उसका हाथ पकड़ना है और शराब का प्याला फेंक देना है। उससे कहना चाहिए कि 'तुम शराब नहीं छोड़ोगे तो मैं तुम्हें नहीं खिलाऊँगी।' फिर पर वह यदि कहे कि 'मैं तुम्हें पीटूँगा' तो कहना चाहिए कि "पीटो। उससे तुम्हारे हाथ दुखेंगे लेकिन मैं तुम्हारे लिए रसोई नहीं बनाऊँगी।" यह पातिव्रत्य धर्म है। मैं समझता हूँ कि स्त्री का यह धर्म है कि वह पुरुष को अंकुश में रखे। स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी न करें, बल्कि उन्हें अंकुश में रखें। आज स्त्री का स्थान बहुत ही गौण है। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें पति का हक देना चाहिए। वह तो जरूर देना चाहिए। परन्तु वह काफी नहीं है। स्त्री को परिपूर्ण आध्यात्मिक हक होने चाहिए। स्त्री को वैराग्यवश का ब्रह्मचर्य का उत्साह का अधिकार नहीं है, ऐसी आध्यात्मिक भावना उन पर लादी गयी है। यह सहन करने लायक वस्तु नहीं है। इसलिए हम उस पर प्रहार करते हैं। आगे स्त्रियों को जो आभूषण आदि पहनाये जाते हैं वे सब सोनार की सोने की खान में डालो। इस युग ने दुनिया का खयाल नहीं किया है। कहा जाता है कि सोने की और मिट्टी की योग्यता समान है। विचार करने पर प्रतीत

होगा कि उनकी योग्यता समान नहीं है। मिट्टी की योग्यता सोने से बहुत ज्यादा है।

मैसूर
१८-१-५७

पतिव्रता का अर्थ

कहा जाता है कि स्त्रियों को पति-सेवा में पीछे जाना चाहिए। ज्ञानेश्वरी में एक वाक्य आता है 'पतिचित्ता सता अनुसरोनी पतिव्रता'—पति के मत का अनुसरण करने में पतिव्रता स्त्री का कल्याण है। जब मैंने यह पढ़ा तब सोचता ही रह गया कि ज्ञानेश्वर को यह क्या सूझा? लेकिन बाद में जब राजवाडे की ज्ञानेश्वरी की संशोधित आवृत्ति मेरे पास आयी जिसमें पुराने पाठ-भेद बताये गये थे उसमें मैंने पढ़ा 'पतिचित्ता अता अनुसरोनी पतिव्रता'—पति के मन का अंकुश देखनेवाली पतिव्रता होती है। ज्ञानदेव ने यह नहीं लिखा होगा कि पति के मन का अनुसरण करनेवाली पतिव्रता है। लेकिन समाज को ज्ञानदेव का यह विचार अच्छा नहीं लगा होगा। इसलिए उसने 'अता' न करके 'सता' कर दिया। इससे पता चलता है कि साहित्य में कितने अत्याचार हुए हैं। यह सारी कहानी बहुत ही हृदय-विदारक और मनोरंजक होगी।

पंढरपुर
११-५-५८

कुआँरापन शादी का एक अंग

[गाँव में आज एक बड़ी शादी का उत्सव था। हर साल करीब बीस-पचीस शादियाँ होती हैं। विनोबा ने [illegible] किया]

११ करोड़ लोग। ४०-५ का आयुर्मान। ४०-५ साल में १८ करोड़ शादियाँ होंगी। अब शादी एक कुमी—यह निर्णायक रहा था

चालीस-पचास साल में १८ करोड़ कुएँ खुद जायेंगे। यानी पचास साल में एक-एक बालिश्त जमीन तरी की बन जायगी। [उन्होंने आगे कहा] मनोरंजन तो स्वर्ग से मना जाये। आप लोग बालक से सरस्वती जानो—कुआँ खोदना पानी का एक हिस्सा समझो। जब तक कुआँ खोदने की तैयारी न हो, उतना पैसा भी जमा न हो, तो शादी मत करो। [आगे उन्होंने विनोद में कहा।] और अगर कुआँ बनने पर भी पत्नी चोटी न करे, तो उसके नसीब फूटे और उसको अगर निराशा हुई तो वही कुआँ उसे दूर करने के लिए काम आयेगा।

दुरसक्की
२६-४-'४१

हर शुभ कार्य में स्त्री-पुरुष सहयोग जरूरी

प्राचीन काल से हिन्दुस्तान में यह प्रथा चली आयी है कि प्रत्येक शुभ कार्य में स्त्री का सहयोग आवश्यक है, तभी वह कार्य पूर्ण माना जाता है। हिन्दू-धर्म में कहा है कि पत्नी के बिना यज्ञ नहीं कर सकते। रामचन्द्र को यज्ञ करना था, उस समय सीता देवी को वन पहुँचाया गया था। तो विश्वामित्र ने कहा कि पत्नी बिना यज्ञ नहीं हो सकता। आखिर सीता की मृण्मयी प्रतिमा बनायी गयी। इसका मतलब यह है कि गृहस्थाश्रमी मनुष्य पत्नी को छोड़कर सार्वजनिक काम नहीं कर सकते। यह सहधर्म-चारिणी कही गयी है। यह सहधर्म यानी पुरुष जो धर्म करे, उसमें स्त्री को भी सहयोग देने को कहा गया है। लेकिन बीच में मुसलमानों का सैकड़ों वर्ष राज्य चला। अंग्रेजों के जमाने में भी बड़े घराने के लोग जिनको नौकरी करने की इच्छा थी पैदा कराया था वे सूट-बूट पहनकर अंग्रेजों का अनुकरण करने लगे। यहाँ तक कि धर्म के विषय में भी पहनने लगे। उसी तरह 'पर्दा' करके मुसलमानों के पास जाने के लिए, उनकी कृपा हासिल करने के लिए बाहर के लोगों ने उनके रिवाज अपनाये। पर्दे का

रिवाज हमने मुसलमानों से ही अपनाया है। तब से यह गुलामी हमारे समाज में आयी है। औरतों को परदे में रखना कुलीनता समझने लगे। उसे अपना धर्म समझ लिया। धर्म का नाम लेकर लोगों ने बहनों को घर में बन्द कर रखा है।

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं

बहनों को ज्ञान की बातें न सुनना होता तो उनको भगवान् कान ही नहीं देता। लेकिन पुरुषों को जैसे कान है वैसे स्त्रियों को भी है। इससे जाहिर है कि स्त्रियों को भी ज्ञान की बातें सुनने का मौका मिले। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। 'ज्ञानं विना मुक्तिर्न भवति जन्म शतेन'। इसलिए स्त्रियों को भी ज्ञान का मौका मिलना चाहिए। हाँ घर में वे रसोई वगैरह का काम करती हैं लेकिन सार्वजनिक कामों में किसी तरह उनकी बुद्धि का उपयोग नहीं होता। समाज को आगे बढ़ाना है, तो स्त्री पुरुष यह भेद मिटाना ही होगा।

जमुआवा (शाहाबाद)
११-९-५२

धर्म-संकट और दम्पति

प्रश्न : राम ने सीता का त्याग करके उस पर अन्याय किया है, ऐसा आपको नहीं लगता ?

उत्तर : यह विचार का विषय है। आदमी के सामने कभी-कभी धर्म संकट उपस्थित हो जाता है यानी दो धर्म सामने आते हैं। ऐसे वक्त किस धर्म को प्रधानता दी जाय और किस धर्म को गौणता यह प्रश्न उसके सामने खड़ा रहता है।

महाराष्ट्र के प्रजा-समाजवादी दल के सामने इसी तरह दो धर्म खड़े थे। एक धर्म कहता था कि कम्युनिस्टों से दूर रहना चाहिए और दूसरा

धर्म कहता था कि उनसे मिलकर काम करना चाहिए। इनमें से एक धर्म उन्होंने स्वीकार किया। वह गलत था या सही यह भविष्य ही तय करेगा।

इसी तरह राम के सामने भी दो धर्म थे। एक था राज-धर्म और दूसरा था पति-धर्म। इनमें से किसी एक को स्वीकार कर दूसरे को छोड़ना पड़ता। या तो राज्य छोड़कर पत्नी को स्वीकार करना पड़ता जिसमें एक आपत्ति थी अथवा पत्नी को छोड़कर राज्य स्वीकार करना पड़ता और उसमें भी एक आपत्ति थी। अर्थात् दोनों तरफ से आपत्तियाँ थीं और राम कुछ भी करते तो भी उन्हें पाप लगनेवाला ही था। तब उन्होंने ऐसा विचार किया कि सीता का मुझ पर इतना विश्वास है कि उसको गलत-फहमी नहीं हो सकती। सीता विश्वास का विषय है। प्रजा के संबंध में राम को ऐसा विश्वास नहीं था। इसलिए राम ने लक्ष्मण से कहा कि सीता को जंगल में छोड़ दो पर आश्रम के निकट छोड़ना। राम को विश्वास था कि सारा विश्व भी यदि मुझ पर निष्ठुरता का आरोप करे तब भी सीता मुझ पर वैसा आक्षेप नहीं करेगी।

अब चाहें, तो आप राम पर आरोप करें पर सीता कभी नहीं करेगी।

लघु आरम्भ का दीर्घ फल

कस्तूरबा गांधीजी की पत्नी थीं। जैसे गांधीजी पढ़े-लिखे थे वैसी कस्तूरबा नहीं थीं। लेकिन उनका स्थान बड़ा था। गांधीजी और कस्तूरबा के नाम आज जैसे सार्वभौम हो गये हैं वैसे ही वशिष्ठ और अरुन्धती के नाम थे। आज भी विवाह विधि में वधू और वर को उत्तर दिशा की तरफ मुँह करके खड़ा करते हैं और अरुन्धती की तरफ इशारा करते हैं। उत्तर दिशा में वशिष्ठ का तारा है और पास ही चार पँखड़ियों के पासके पर अरुन्धती का छोटा-सा तारा है। इन दो तारिकाओं के दर्शन करके

उनको नमस्कार करने की विधि आज भी विवाह में चलती है। कौन वसिष्ठ और कौन अरुन्धती? लेकिन वसिष्ठ के साथ अरुन्धती नाम भी अमर हो गया है। देह के पास छाया होती है लेकिन मनुष्य छाया की ओर ध्यान नहीं देता। फिर भी छाया मनुष्य को छोड़ती नहीं है। अरुन्धती का ऐसा ही हाल था। उसका व्रत था कि पति के साथ रहूंगी सुख में या दुःख में। वह संकट में पड़ेगा तो उसके पीछे संकट में पड़ना और वह स्वर्ग में जाय तो उसके पीछे स्वर्ग में जाना। कहीं न ठहरते हुए जाना इसी व्रत के कारण तो उसका नाम अरुन्धती पड़ा। ऐसा ही दूसरा नाम सीता का है। हम 'राजा राम' के साथ सीता राम भी कहते हैं। रामचन्द्रजी वनवास के लिए निकले तो वह भी उनके पीछे निकल पड़ी। रामचन्द्रजी ने कहा 'माताजी ने तुझे तो वनवास नहीं दिया है' तो सीता ने जवाब दिया 'आप सुखोपभोग के लिए कहीं निकलते तो शायद मैं न आती लेकिन आप जंगल में जा रहे हैं इसलिए मैं आपके बगैर नहीं रहूंगी।"

अच्छा वर किसे कहें?

अच्छे माता-पिता चाहते हैं कि लड़की अच्छे घर में जाय। अच्छे घर के क्या लक्षण हैं? जिस घर में पानी न खींचना पड़े। जहाँ पानी भी नहीं खींचना पड़ता वहाँ उस अनाज भी नहीं पचता और डॉक्टरों के बिल भरने पड़ते हैं।

पार्वती ने कहा था कि मैं तो शंकर को ही वरूंगी। बड़े-बड़े ऋषि महर्षियों ने कहा कि शंकर फकीर हैं वहाँ जाकर क्या करेगी? किसी अच्छे घर में जाना। पर उसने तो कहा कि मुझे उन्हीं के यहाँ जाना है।

रामायण में भी एक कहानी है। अच्छी है। सुनने लायक है। राम-जी को वनवास हुआ तो सीताजी ने कहा मैं भी आऊँगी। उसे

हो जाती है और यह जेवर छोड़े की हो तो उसे बेड़ी मानेगी। ये जेवर पहनने से बहनें डरपोक बनती हैं। गहना ने बहनों को गुलाम बनाया है। मैं आजकल देख रहा हूँ कि घर से बाहर वह जाती है तो पालकी में बन्द करके जाती है। मैं कहता हूँ कि क्या सूर्य-किरण से उसको कोई नुकसान होनेवाला है? मैं कहता हूँ कि पालकी में क्या भेजते हो? ट्रंक में बन्द करके भेज दो तो अत्यन्त सुरक्षित रहेगी। इतना लोभ इतनी आसक्ति है और बोलते हैं कि शादी नहीं होती। क्या लड़के नहीं हैं या लड़कियाँ नहीं हैं? लड़के लड़की को चाहते हैं लड़कियाँ लड़के को चाहती हैं। तो मुश्किल क्या है? तिलक लगाना पड़ता है। बिना पैसे के कोई बात है ही नहीं। यहाँ तक होता है कि लड़की को लड़का पसन्द होता है, लड़के को लड़की पसन्द होती है। तो फिर क्या बात है? बोलना है कि मेरा लड़का एम ए है, पाँच हजार रुपये में शादी नहीं होगी। एक भाई का हमें पत्र आया था। उसके नाम के पीछे कोई १ १५ अक्षर जुड़े थे। तो यह इंजन ही बन गये। इसमें इंजन के बिना को डिब्बा हिलता नहीं यह तो पद का पुतला बन गया। लन्दन जाकर डिग्री ले आये। तो आप क्या समझते हैं पाँच हजार में शादी नहीं होगी? भाव बढ़ेगा। यह तो बेचा जाता है। यह कोई धर्म-कार्य है? शास्त्रों का आधार देते हैं पेर भगवान् ने सबों को तकलीफ देते हैं। और फिर भी आचार वैसी बातें चलती हैं। कितना अधर्म है? ऐसे अधर्म करते हैं और फिर भी बोलते हैं कि हम दुःखी हैं। जहाँ अधर्म होगा वहाँ भगवान् दुःख देगा ही।

पताही (चम्पारण)
११ १ ५८

परिवार नियोजन

यहाँ मुझसे पूछा गया कि 'परिवार-नियोजन' की योजना पर सरकार कितना अधिक आग्रह रख रही है। इसके बारे में आपकी क्या राय है?

वास्तव में मुझे मंजूर करना चाहिए मैं समझ नहीं पाता कि यह क्या चल रहा है ? हिन्दुस्तान में हर वर्गमील के लिए तीन सौ की जनसंख्या है तो जापान में एक हजार। फिर हिन्दुस्तान में अधिक जनसंख्या है ऐसा क्यों माना जाता है ? क्या यह पुरुषार्थ का विषय है ? आज हिन्दुस्तान में ज्यादा लोग हैं और उनके पोषण का कोई इन्तजाम नहीं हो पाता यही तो सवाल है। आखिर यह सामाजिक और आध्यात्मिक विषय है। किन्तु इन दिनों यही चलता है कि कृत्रिम रीति से परिवार नियोजन किया जाय और विषय-वासना बढ़ने पर कोई पाबन्दी न रखी जाय।

तालीम और नैतिकता बढ़ायें

आज यह सारा मुहब्बत के नाम पर चल रहा है और बड़े-बड़े परोपकारी भी इसके लिए अनुकूल हैं। वे सोचते हैं कि जब तक ऐसी युक्ति न दी जायगी बहनों को भाइयों के हाथ से मुक्ति न मिलेगी। किन्तु हम मानते हैं कि बहनों में ही इतनी योग्यता क्यों न हो कि वे नाहक आक्रमण न होने दें। यह जो ख्याल बन हो गया है कि पत्नी को हमेशा पति के वश रहना चाहिए, वह गलत हो सकता है। बहनों को इस बारे में अच्छी तालीम मिलनी चाहिए और उनकी नैतिकता बढ़नी चाहिए। खेत में एक सामान्य बीज बोया जाता है तो लोग उसकी कितनी चिन्ता करते हैं! मान लीजिये कि कोई किसान धूप मौसम में बीज खाने के बदले गड्ढे में बोये जब कि जमीन जल रही हो तो उसे क्या कहा जायगा ? अगर वह कहे कि मेरा 'एक्सपेरिमेंट' चल रहा है और मैं चाहता हूँ कि बीज न उगे तो आप उसे 'नेशनल वेस्टेज' (राष्ट्रीय अपव्यय) समझेंगे। इसी तरह मनुष्य के बीज का इस्तेमाल हो और उससे कोई फल निर्माण न हो उसमें कोई मानी नहीं है। कोई भी वैज्ञानिक कहेगा कि निरर्थक क्रिया न होनी चाहिए। लेकिन आज के

स्त्रियों में पुरुषों से ज्यादा नीतिमत्ता

प्रश्न : नीति की कल्पना के कारण स्त्री शुरू से ही घर के बाहर कदम नहीं रख सकती। तब क्या किया जाय?

विनोबा : नीति के सम्बन्ध में स्त्रियों में 'सुपीरियारिटी काम्प्लेक्स' है। समझती हैं कि उनमें यह पुरुषों ने ही पैदा किया है। किसी माँ को अपने लड़के के बिगड़ने की खबर से जितना दुःख होगा, उससे अधिक लड़की के बिगड़ने की खबर से होगा। अर्थात् पुरुषों के बारे में स्त्रियों के मन में 'हीन कल्पना' होती है। पुरुषों के बुरे काम करने पर स्त्रियाँ प्रायः कह देती हैं कि 'वह पुरुष ही है'। स्त्रियों को नीतिमत्ता का जो अभिमान है, वह सही है। जैसे हम किसी जानवर के बारे में कह देते हैं कि 'वह जानवर ही तो है', वैसे ही स्त्रियाँ भी पुरुषों के बारे में कह देती हैं। हिन्दुस्तान में कानूनन बीड़ी पीने का अधिकार होने पर भी कितनी बहनें बीड़ी पीती हैं? कानूनन कितनी ही छूट होने पर भी स्त्रियाँ उतनी स्वच्छन्द नहीं होतीं। कुछ जातियों में ऐसी प्रथा है कि पुरुष मांस खाते हैं, पर स्त्रियाँ नहीं खातीं और पकाकर भी नहीं देतीं। जो पुरुष कभी भी रसोई नहीं बनाते, उन्हें ऐसी स्थिति में कहीं जंगल जाकर स्वयं पकाकर मांस खाना पड़ता है। इस तरह स्त्रियों में एक प्रकार की धर्म रक्षण की वृत्ति है। पश्चिम की शिक्षण पद्धति में कुछ गुणों के होते हुए भी उसमें संयम की न्यून-कल्पनाएँ हैं। वस्तुतः भारतीय संस्कृति में ऐसी बात नहीं है और आजकल भी नहीं है। स्वराज्य के बाद हम उसको उत्तरोत्तर दूर होते जाता है। स्त्रियों के पास जो नैतिक अधिकार है उन्हें वैसा रखने में उनका लाभ नहीं है।

पुरुष से स्त्री श्रेष्ठ

वर्ण-व्यवस्था में भी अनजान में ही सही, एक प्रकार की विषमता मान ली गयी थी। पुरानी कल्पना के अनुसार अनुलोम विवाह हो सकता था।

यानी उच्च वर्ण का पुरुष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध कर सकता था। प्रतिलोम विवाह नहीं हो सकता था यानी उच्च वर्ण की स्त्री अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ विवाह नहीं कर सकती थी। इसमें स्त्रियों की श्रेष्ठता मान्य ही की गयी है। ऐसी मान्यता थी कि ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ, क्षत्रिय उनसे जरा नीचे, वैश्य उनसे नीचे और शूद्र उनसे भी नीचे हैं। लेकिन स्त्री तो पुरुष से भी श्रेष्ठ थी। माने कोई स्त्री ब्राह्मण हो तो वह अत्यन्त श्रेष्ठ होगी। ऐसी हालत में वह क्षत्रिय पुरुष से विवाह नहीं कर सकेगी। किन्तु कोई क्षत्रिय स्त्री हो तो वह श्रेष्ठ होने से ब्राह्मण पुरुष से विवाह कर सकती थी। इस मान्यता में स्त्री की श्रेष्ठता सूचित है। इसमें कहीं गलती नहीं हुई है। सन्तान का संपोषण करने और कोख में रखने की जवाबदारी जिस व्यक्ति पर है वह जवाबदारी रहित व्यक्ति से श्रेष्ठ ही है। सन्तान-व्यवहार शुरू होने पर आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री की पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठता मान्य करने पर पुरुषों को लजाना नहीं चाहिए। स्त्रियों को अपनी श्रेष्ठता का अभिमान नहीं रखना चाहिए पर उसे जानना चाहिए और पुरुष-वर्ग को मर्यादा में लाना चाहिए।

कुछ समाज-शास्त्रियों के स्थूल विचार होते हैं। उनका आध्यात्मिक विचारों मूलभूत मूल्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। जैसे हिन्दुस्तान में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है। इसलिए समाज-शास्त्रकारों ने कहा कि स्त्रियाँ यदि ब्रह्मचारिणी रहने लगेंगी तो अधिक पुरुष स्त्री विहीन रहेंगे और फिर समाज में आपत्ति आयेगी। अतः स्त्रियों का विवाह करना ही चाहिए। इस तरह वे स्त्रियों के ब्रह्मचर्य के प्रतिकूल और पुरुषों के ब्रह्मचर्य के अनुकूल हैं। पुरुषों का ब्रह्मचारी रहना ठीक ही है क्योंकि स्त्रियों की संख्या कम है। अगर सारे पुरुष विवाह करने लगेंगे तो इनके रास्ते निर्णय होगी। इसलिए समाज-शास्त्र की दृष्टि से कुछ

पुरुषों का ब्रह्मचारी रहना दृढ़ ही है। हिन्दुस्तान में जो बहुपत्नीत्व मान्य था वह पुरुषों के कारण था। हिन्दू-धर्म ने उसे उत्तम कभी नहीं माना।

स्त्रियों ने पुरुषों को निम्नकोटि का इसलिए भी माना कि कच्चा बीज रखने का परिणाम स्त्रियों को ही अधिक भुगतना पड़ता है। अतः स्त्रियों ने यह तय किया कि हमें ज्यादा सावधान रहना चाहिए। ऐसा तय करना उचित ही है।

'नहिं असत्य-सम पातक पुंजा'

सुशिक्षित घरों की स्त्रियों का पुनर्वास कैसे किया जाय? इस विषय में मेरा मत क्रांतिकारक है। मैं सारे धर्मों में सत्य को श्रेष्ठ धर्म मानता हूँ और सबसे बड़ा अधर्म असत्य है। व्यभिचार भी असत्य जितना बड़ा पाप नहीं। परन्तु हमने असत्य को गौण महत्त्व देकर व्यभिचार, हत्या आदि को बड़ा पाप माना जाने लगा है। परिणाम यह है कि सारे पापों को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। इस कारण सुधार हो नहीं पाता। हम रोग को छिपाते नहीं हैं क्योंकि हम चाहते हैं कि रोग दूर हो और लोगों की मदद भी हमें मिले। इसी प्रकार हमसे अगर कोई नैतिक गलती हो जाय तो माता-पिता और मित्रों को बताना चाहिए और कहना चाहिए कि मुझे संभालिये, ठीक कीजिये। किन्तु आजकल ऐसी गलतियों को छिपाने की प्रवृत्ति है क्योंकि प्रकट करने पर व्यक्ति के प्रति घृणा पैदा होती है। महारोगी अपना रोग छिपाते हैं क्योंकि समाज में उनके प्रति घृणा है। लेकिन उसका परिणाम यह होता है कि रोग उपचार को तुरन्त मालूम नहीं होता, बहुत बढ़ जाने पर वह ठीक भी नहीं हो सकता। अगर पहले ही पता किया जाय तो रोग दुरुस्त हो सकता है। अतः नैतिक पापों को भी छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से सबसे बड़ा पाप जो असत्य है वह कमजोर पड़ जाता है।

इसलिए ऐसा समाज बनाना चाहिए जिसमें हम पापों को घृणा का विषय नहीं मानेंगे। किसीके हाथ से गलती होने पर जैसे हम उसे ठीक करते हैं उसके प्रति दया दिखाते हैं वैसी ही भावना पाप के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए। सत्य की महिमा बढ़ानी चाहिए और समझना चाहिए कि असत्य सबसे बड़ा पाप है।

इसी प्रकार छोटे बालकों से गलती होने पर उन्हें मारना नहीं चाहिए। बीस वर्ष तक की उम्र तक के लड़कों की नैतिक गलतियां को खेल की गलतियाँ ही समझें। अगर समाज में गलतियों को छिपाने का प्रयत्न होगा तो अँधेरे में पाप अधिक होंगे। इसलिए सुरक्षित घरों में आनेवाली बहनें दया की पात्र हैं घृणा की नहीं—यह ध्यान में रखकर ही काम करना चाहिए।

पिछले सालों में हिन्दू-मुसलमानों के संघर्ष में एक-दूसरे ने एक-दूसरे की बहनें भगायीं। बाद में जब उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न शुरू हुआ तब मुसलमानों ने तो अपनी बहनों को स्वीकार कर लिया पर हिन्दुओं ने स्वीकार नहीं किया। उनसे कहना पड़ा कि वे स्वीकार करें। इसमें हिन्दुओं की दृष्टि गलत थी। ये बहनें अपनी इच्छा से नहीं गयी थीं जबर्दस्ती भगायी गयी थीं। ऐसी हालत में उनको वहाँ बच्चे हो गये तो भी उन्हें पतिता न माना जाय—यह सब हिन्दुओं को समझाना पड़ा। यह अनुदारता दूर होनी चाहिए। जिस प्रकार रोगियों के दवाखाने चलते हैं उसी प्रकार रेस्क्यू होम भी दया के विषय समझकर चलाये जायँ। ●

वैदिक काल में स्त्रियाँ बड़ी ज्ञानवती होती थीं। एक प्रसंग है। याज्ञवल्क्य की सभा में चर्चा चल रही थी। गार्गी उठ खड़ी हुई और उसने याज्ञवल्क्य से कहा 'जैसे काशी या विदेह का क्षत्रिय वीर बाण मारता है, वैसे ही मैं तुझे प्रश्नरूपी बाण मारती हूँ। अपनी छाती सामने कर, मैं प्रश्नों से ताड़ना करूँगी।' फिर उसने दो सवाल पूछे। याज्ञवल्क्य ने जवाब दिये। तब उसने हिम्मत के साथ पंडितों से कहा कि 'पंडितो! अब याज्ञवल्क्य से चर्चा मत करो। इसे नमस्कार करो। इससे कठिन सवाल नहीं होंगे।" गार्गी वीर के समान खड़ी होकर हिम्मत के साथ कहती है कि 'मुझसे कठिन सवाल कौन पूछेगा?" यह वेद और उपनिषदों का जमाना था और आज?

गार्गी की कहानी पढ़कर मन में कई विचार उठे। उस जमाने में गार्गी के सवाल सबसे कठिन थे लेकिन याज्ञवल्क्य उनका जवाब दे सका। क्या इस युग में कोई ऐसी गार्गी पैदा नहीं होगी जिसके सवालों का जवाब कोई भी याज्ञवल्क्य न दे सकेगा और हार मान लेगा?

स्त्रियों को मेरा खास संदेश है कि अखण्ड ज्ञान की लालसा रखिये। ज्ञान-तृष्णा कभी खत्म न होने दें। ज्ञान की उपासना से ही आप दुनिया को जीत सकती हैं।

सकरसराय (वाराणसी)
१-५ ५१

स्त्री-शिक्षा और उसका स्वरूप

प्रश्न महिलाओं की शिक्षा का स्वरूप कैसा हो? लड़कियों को हम अच्छी माँ बनने की शिक्षा दें या उन्हें नौकरी के लिए तैयार करें?

विनोबा स्त्री और पुरुष की शिक्षा में कुछ समान अंश रहता है तो कुछ दोनों का विशेष अंश रहता है। शिक्षा में स्त्री-पुरुषों के लिए समान अंश बहुत अधिक है विशेष अंश कम। पहले हम समान अंशों को देखें।

स्त्री और पुरुष दोनों की आत्मा समान संस्कारवान् होती है। इस विषय में दोनों में कोई भेद नहीं। यह है पहली समानता। दूसरी समानता वासना-सम्बन्धी है। क्षुधा और तृष्णा आदि वासनाएँ दोनों में समान होती हैं। दोनों का सृष्टि के साथ का सम्बन्ध यानी विज्ञान का सम्बन्ध भी समान है। एक को सृष्टि एक प्रकार की दीखती है और दूसरे को दूसरे प्रकार की ऐसा तो है नहीं। यह हुई तीसरी समानता।

सह-शिक्षा और समान शिक्षा मिले

इससे स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष की शिक्षा के अधिकांश अंश समान होते हैं। गुण-विकास के नियम भी दोनों के लिए समान ही लागू होते हैं। इसे ध्यान में रखकर मैं तो कहता हूँ कि स्त्री-पुरुष को समान शिक्षा मिलनी चाहिए और साथ ही मिलनी चाहिए।

लोग पूछते हैं कि क्या सह-शिक्षा ठीक है? लेकिन मैं नहीं समझता कि यह सवाल ही क्यों उठता है। इसका उत्तर तो खुद ईश्वर ने ही दे दिया है। अगर वह सह-शिक्षा नहीं चाहता तो कुछ घरों में केवल बेटे देता और कुछ घरों में केवल बेटियाँ, लेकिन उसने तो हर घर में दोनों दिये हैं। इससे ध्यान में आ सकता है कि ईश्वरेच्छा के अनुसार शिक्षण एकत्र ही होना चाहिए। शिक्षा के अवसर तो दोनों को समान देने ही

चाहिए, फिर वे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार बढ़ेंगे। कृत्रिम उपायों से लड़के-लड़कियों को अलग रखने से उनका विकास नहीं, विकार-पोषण होगा या अति एकांगी शिक्षा मिलेगी।

विषय भेद कर्मयोग में

शारी शिक्षा में समान अंश तो अधिक है, फर्क सिर्फ कर्मयोग में आता है। शारीरिक भेद के कारण कुछ काम ऐसे होंगे जो स्त्रियों और पुरुषों के भिन्न रहेंगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आजकल जिस प्रकार चल रहा है, उस प्रकार हरएक काम स्त्री या पुरुष का अलग ही निश्चित हो। उदाहरण के लिए रसोई के काम को ले लीजिये। सामान्यतः स्त्रियां ही रसोई बनाती हैं, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह स्त्रियों का ही काम माना जाय। उसमें पुरुषों को भी प्रवीण बनना चाहिए। रसोई एक उत्पादक काम है। वैसे उसमें कोई नया उत्पादन नहीं करना होता। नया उत्पादन तो परमेश्वर ही करता है। मनुष्य तो केवल रूपान्तर करता है। जैसे गेहूं से रोटी बना दी, लकड़ी से टेबल या कपास से कपड़ा बना लिया। लेकिन रसोई आखिरी क्रिया है। आखिरी क्रिया में गलती नहीं चल सकती। शुरू की क्रिया में गलती हो तो कम नुकसान होता है, आखिरी क्रिया में हो तो अधिक नुकसान होता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण विरोध रखने के उत्पादक कार्य रसोई से हम लड़कों को कैसे वंचित रख सकते हैं? यह तो बड़ा अन्याय होगा। इस प्रकार अगर हम लड़के और लड़कियों के कामों को अलग बना देंगे तो समाज के टुकड़े हो जायेंगे और उसका एक अंग [illegible] बन जायगा। लड़कों को इस काम से नफरत नहीं होनी चाहिए। हालांकि मैं यह मानता हूं कि रसोई की प्रधान जिम्मेवारी स्त्री की रहेगी, लेकिन वह स्त्रीलिंग काम न समझा जाय। कर्मयोग में स्त्री-पुरुषों के कामों के प्राधान्य में अन्तर पड़ सकता है, लेकिन वहां भी दो टुकड़े नहीं करने देने चाहिए। नहीं तो उसमें आत्मा ही खण्डित हो जायगी।

रसोई की तो केवल एक मिसाल दी। घर के सब कामों में पुरुष को अवश्य हिस्सा लेना चाहिए। वैसे ही बाहर के कामों में स्त्रियों को अवश्य हिस्सा लेना चाहिए। दोनों के कामों में भारी अन्तर है। कौन किस पर अधिक जोर देता है यही देखना है।

खेती, बढ़ईगिरी, बुनाई, सिलाई आदि काम स्त्रियाँ अच्छी तरह कर सकती हैं। आजकल जिस प्रकार मशीनों ने ग्रामोद्योगों पर आक्रमण किया है, शहरों ने गाँवों पर आक्रमण किया है, उसी प्रकार पुरुषों का भी यह स्त्रियों पर एक तरह से आक्रमण हुआ है। धीरे-धीरे सब कार्य पुरुषों के हाथ में चले गये। स्त्रियों के पास आजकल सिवा रसोई के और कोई धन्धा नहीं रह गया है। मैं यह नहीं कहूँगा कि पुरुषों ने जान-बूझकर स्त्रियों से धन्धे छीने हैं। स्त्रियाँ कुछ कलात्मक काम पुरुषों से अधिक भी कर सकती हैं। चित्रकला, कताई आदि कलात्मक तथा सामाजिक काम स्त्रियाँ विशेष रूप से कर सकती हैं। पुरुष उनमें अधिक न पड़ें तो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बन सकती हैं।

राष्ट्र-संरक्षण तक के काम स्त्रियाँ कर सकती हैं। अभी तक उसमें हिंसा का ही आश्रय किया जाता रहा, इसलिए कम ताकतवाली होने के कारण स्त्रियों को उसमें नहीं लेते थे। लेकिन अहिंसा का नया रास्ता निकलने के बाद वह दिशा भी स्त्रियों के लिए खुल गयी है। समाज-रक्षण आदि कामों में तो स्त्रियों को अधिक हिस्सा लेना ही चाहिए। तभी दुनिया हिंसा से बचेगी। पुरुषों द्वारा यह क्षेत्र सँभालने के कारण द्वेष बढ़ा है। इस काम में स्त्रियों और पुरुषों का स्थान बराबरी का होना चाहिए। एक अत्यन्त विशेष क्षेत्र स्त्रियों के लिए बच्चों की तालीम का है। बुनियादी तालीम स्त्रियों के ही हाथ में होनी चाहिए।

सिंह, व्याघ्र आदि प्राणियों में यह पाया जाता है कि सन्तानरक्षा का भार तो माता पर ही रहता है। वह अपने खाने के लिए शिकार भी खुद हासिल कर लेती है। प्राणियों की बुरी बातों का हम अनुकरण न

करें, लेकिन अच्छी माता का तो कर ही सकती है। आजीविका-सम्पादन की जिम्मेवारी से स्त्री को मुक्त होने की जरूरत नहीं है। हाँ स्त्रियों को उनके कामों में जरूरी रियायतें मिलनी चाहिए। आज स्त्रियों को कम मजदूरी देने का जो रिवाज चल रहा है, वह तो बिल्कुल गलत और सरासर अन्याय है।

स्त्रियों में पुरुषों से अधिक एकाग्रता होती है। यह एक कुदरती देन है। ध्यान-संयोजन इस गुण के बिना हो ही नहीं सकता। इस गुण के कारण स्त्रियों की अवस्था ध्यान-योग और भक्ति-योग के लिए अधिक अनुकूल है। कर्म-योग और ज्ञान-योग पुरुषों के लिए अधिक अनुकूल हैं। कर्मयोग में भी ऐसे काम जिनमें अधिक एकाग्रता की जरूरत पड़ती है, स्त्रियाँ कुशलता से कर सकती हैं। उनसे बारीक की क्रियाएँ—सिलि-सिव—स्त्रियाँ अच्छी तरह से कर सकती हैं।

बाल-संगोपन आदि कुछ काम स्त्रियों के विशेष हो सकते हैं—हालाँकि इस विषय में भी ज्ञान तो दोनों को होना चाहिए। लेकिन बालक का ज्ञान स्त्री को अधिक होना चाहिए। बाकी सारा शिक्षण सर्वसामान्य ही चल सकता है।

काशी विद्यापीठ, काशी
१७-८-५१

स्वतंत्र रक्षण के लिए स्वतंत्र बुद्धि

प्रश्न : आज स्त्री-पुरुष दोनों को एक-सी तालीम दी जाती है। स्त्रियों को कैसी तालीम दी जानी चाहिए ताकि वे अपना स्वतंत्र रक्षण कर सकें?

विनोबा : स्वतंत्र रक्षण के लिए बहनों को स्वतंत्र बुद्धि रखनी चाहिए। बहनों को यह समझना चाहिए कि हमारा परमेश्वर से सीधा सम्बन्ध है, बीच में पुरुषों की जरूरत नहीं। आज स्त्रियाँ समझती हैं कि

आदर्श है। उनके मुख में ब्रह्मचर्य का आदर्श है। ध्रुव ईश्वर का नाम लेता हुआ दुनियाभर में घूमता है। इसी प्रकार स्त्रियों में भी कोई आदर्श होना चाहिए। मीराबाई का एक आदर्श जरूर हमारे सामने है। लेकिन उसे तो लोगों ने हरि के पीछे पागल समझ लिया। इस अलौकिक और *अद्वितीय किस्से में नारी को स्वातन्त्र्य दिखाने का कोई सवाल नहीं ही है।* मीरा के उदाहरण का किसीने अनुकरण नहीं किया।

मैं तो मानता हूँ कि स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य सन्यास वैराग्य आत्मचिन्तन आदि का स्वतन्त्र रूप से अधिकार होना चाहिए। इसके बिना हमारे प्रगति के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावट आ गयी है। हिन्दू-धर्म में स्त्रियों को वैधव्य की स्थिति में ब्रह्मचर्य का अधिकार दिया गया है। लेकिन इतना काफी नहीं होगा। यह तो लाचारी है।

स्त्रियों में वात्सल्य-भाव स्वाभाविक तौर पर रहता है। अगर वे माता बनेंगी, तो मैं उनका दोष नहीं निकालूँगा, बल्कि उनका गुण ही मानूँगा। लेकिन अगर कोई स्त्री ब्रह्मचारिणी रहना चाहे, तो उसे रोकना क्या चाहिए? उसकी माँग को दूसरे के घर भेजने की वृत्ति ठीक नहीं है।

काशी विद्यापीठ, काशी
१०-८-५१

भक्ति और आत्मज्ञान आवश्यक

मुझसे मनोहरजी कहते हैं कि बिहार में कई स्त्रियाँ कैथोलिक हो गयी हैं। अब वे स्त्रियाँ भी सेवा करती हैं और ब्रह्मचारिणी भी रह सकती हैं। हमें ऐसी स्त्रियाँ हिन्दू-धर्म में क्यों नहीं मिलतीं? कैथोलिक-सम्प्रदाय में क्या बात है कि वे बहनें यों कर सकती हैं, वह हमारी बहनें नहीं कर सकतीं? इसका कारण स्पष्ट है कि कैथोलिक-धर्म ने स्त्रियों के लिए वह मार्ग खुला कर दिया है। जैन और बौद्धधर्म में वह मार्ग खुला है, लेकिन हिन्दू-धर्म में नहीं है। हिन्दू-धर्म में प्राचीन काल में ऐसा होता

स्त्रियों को वे सारे क्षेत्र हाथ में लेने चाहिए, जो सांस्कृतिक माने जाते हैं। आज तक इन क्षेत्रों में प्रकट रूप में ज्यादातर पुरुषों का हाथ रहा है, अप्रकट रूप से स्त्रियों का हाथ रहा है। दुनिया के महान् ग्रन्थ जिनका दुनिया पर असर है चाहे वह वाल्मीकि रामायण हो व्यास का महाभारत हो होमर दान्ते मिल्टन आदि के काव्य हों सबके सब पुरुषों ने लिखे हैं। वेद में थोड़ी स्त्रियां भी ऋषि हैं जिन्होंने मंत्र निर्माण किये हैं। फिर बीच में कर्नाटक की अक्क महादेवी राजस्थान की मीराबाई आदि दो-चार नाम आते हैं। परन्तु कुल साहित्य पर स्त्रियों का ज्यादा असर नहीं रहा है। अभी यूरोप में कुछ स्त्रियां लिखने लगी हैं। यह उनका सामाजिक कर्म माना जाता है।

बच्चों को तालीम दें

बच्चों की तालीम का काम भी आज पुरुषों के हाथ में है। वस्तुतः पुरुषों में बच्चों को तालीम देने लायक कोई कला नहीं दीखती। बड़े होने पर बड़े ही पुरुष उन्हें तालीम दे सकें परन्तु प्राइमरी स्कूल के बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय यह पुरुष क्या जानें? यह सारा-का-सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में आना चाहिए। साहित्य तालीम धर्म का आयोजन आदि क्षेत्रों में स्त्रियों को स्थान मिलना चाहिए।

आश्रम स्थापित करें

स्त्रियों को एक विशेष काम यह करना चाहिए कि वे आश्रमों की रचना करें। गांधीजी ने आश्रम खोले जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों रहते थे। परन्तु किसी स्त्री ने ऐसा आश्रम नहीं खोला जिसमें दोनों रहते हों।

पांडिचेरी की माताजी हैं परन्तु यह आश्रम श्री अरविन्द ने खोला मा
ने नहीं। स्त्रियां स्वयं भक्त पहले भी हुई हैं आज भी हैं। पा
के आश्रम ने देश को बनाया। इस आश्रम के जरिये हिन्दुस्तान पर
डाला गया। हिन्दुस्तान के कोने कोने में ऐसे लोग मिलते हैं जो स
मती में दो चार महीने या साल-दो साल रहे हैं और वहां से स्फूर्ति
काम कर रहे हैं। मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के गुरुकुल ने रवीन्
के शान्ति-निकेतन ने श्री अरविन्द के आश्रम ने भारत पर जो
डाला वैसा असर देश पर डालनेवाली स्त्रियां क्यों नहीं निकल सक
स्त्री-पुरुष में जो भेद है, वह स्वाभाविक माना जाता अगर उससे
का काम ठीक चलता। परन्तु इधर तो पुरुषों की नकल का सि
लसिला है। वे स्त्रियों से भी कहने लगे हैं कि तुम बन्दूक लेकर ब
इसलिए इसके आगे यह पुराना बंटवारा नहीं चलेगा। अब स्त्रि
हिन्दुस्तान पर असर डालने का काम उठा लेना चाहिए और
कर्मयोगिनी तो बहुत असर डाल सकती हैं।

हिन्दुस्तान में ऐसी कोई संस्था नहीं है जिसे किसी स्त्री ने च
हो और उसमें पुरुष और स्त्री दोनों आते हैं तालीम पाते हैं। स्त्रि
घर का बच्चों के पालन का जिम्मा है जो एक बहुत बड़ा काम है
अपनी माता के प्रति बहुत ही श्रद्धा है। माँ का स्मरण न होता
ऐसा हमारा एक भी दिन नहीं बीतता। यह उपकार अमर है।
चलेगा ही। स्त्रियों का यह अधिकार कोई छीन नहीं सकता। अगर
यह अधिकार छीन सकते तो छीनते। परन्तु परमेश्वर ने योजना
बनायी है कि बच्चा माँ के उदर से पैदा होता है इसलिए यह पु
हाथ में आ ही नहीं सकता। वे स्त्रियों को इस पद से हटा नहीं
बाकी कुल कामों से हटा रहे हैं। अगर स्त्रियां आश्रम-रचना क
उनके कार्यों का समाज पर बड़ा भारी प्रभाव स्थायी प्रभाव सी
प्रभाव पड़ेगा।

अन्दर नहीं जा सकता बाहर ही रहता है। इसलिए उसका कुछ विचार बाहर ही रहता है। परन्तु यहाँ पर ब्राह्मणों ने बहुत काम किया क्योंकि वे घर के अन्दर पहुँचती थीं। बच्चों की शिक्षा मुख्यतया स्त्रियों को होती है इसलिए स्त्रियों की संमति के बिना भूदान कामयाब नहीं हो सकता है। पुरुष थोड़ा दान देता है परन्तु विशेष दान हो तो स्त्रियों की सम्मति के बिना नहीं दे सकता।

इस तरह स्त्रियों के सामने बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है। भूदान तथा शान्ति-सेना आश्रम और तालीम इस तरह विविध कार्य उन्हें करना चाहिए। आज तक वे इस काम में गौण रूप से लगी थीं परन्तु अब उन्हें मुख्य बनना होगा।

मैसूर
२१-९-'५७

स्त्रियों के धन्धे स्त्रियों के पास ही रहें

जैसे शहर के लोग देहात के धन्धों को हथिया रहे हैं वैसे ही पुरुषों ने स्त्रियों के धन्धे हथिया लिये हैं। पहले पुरुष खेती करते थे और स्त्रियाँ बुनाई करती थीं। वेदों में जहाँ-जहाँ बुनाई का उल्लेख आता है वहाँ-वहाँ 'बुननेवाली' (वयन्ती) शब्द ही आया है। अंग्रेजी में भी पुरुष के लिए 'हजबंड' (Husband) यानी किसान और स्त्री के लिए 'वाइफ' (Wife) यानी बुननेवाली शब्द है। परन्तु आगे चलकर बुनाई पुरुषों ने शुरू कर दी और स्त्रियों को कताई करने का काम दे दिया। यानी मुख्य कार्य पुरुषों के हाथ में रहा और गौण कार्य स्त्रियों के हाथ में रह गया। कताई करने के लिए अधिक स्त्रियों की जरूरत होती है इसलिए बुनकरों में एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा चल पड़ी। इस तरह स्त्रियों को गौण स्थान मिला। वस्तुतः बुनाई का काम स्त्रियों के

हाथ में था परन्तु अब सिलाई की मशीन आने के बाद यह कार्य भी पुरुषों की तरफ ही चला गया है। धंधे के लिए मेरी कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु स्त्रियों का यह काम स्त्रियों के ही हाथ में रहना चाहिए। यों भोजन बनाने का काम स्त्रियों का माना जाता है परन्तु होटलें खुलने के बाद यह धंधा भी पुरुषों के हाथों में चला गया है। मेरा मत है कि जो काम स्त्रियों के लिए करना उचित है, वे उन्हीं के लिए रहने चाहिए। इससे उनकी स्वतंत्र प्रतिष्ठा रहेगी। अन्यथा सारे काम पुरुषों के हाथ में चले जायेंगे और स्त्रियों को सदा-सर्वदा के लिए पराधीन पुरुषाधीन रहना होगा। स्त्रियों का पराधीन रहना उचित है ऐसा अगर आप मानते हैं तो मैं पुरुषों से कहूँगा कि आप एक गारंटी दें कि समस्त बच्चों के बड़े होने तक हम मरेंगे नहीं। लेकिन आप लोग चाहे जब मर जाते हैं और फिर सारी जवाबदारी स्त्रियों पर आ पड़ती है। ऐसी स्थिति में जैसे देहात के लोगों के लिए कुछ धंधे छोड़ देने पड़ते हैं वैसे ही स्त्रियों के लिए भी कुछ धंधे छोड़ देने चाहिए।

प्राथमिक शालाएँ स्त्रियाँ ही चलायें

मेरे विचार में प्राथमिक शालाएँ स्त्रियों के हाथ में ही रहनी चाहिए। उनमें लड़के और लड़कियाँ एक साथ पढ़ेंगी। अगर सारा प्राथमिक शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा तो बच्चों का विकास ठीक-ठीक होगा वे ठीक रास्ते लगेंगे। समाज की मर्यादा में रहने की भी कुछ शक्ति स्त्रियों में आयेगी। आज अगर स्त्रियों में उसकी योग्यता या शिक्षण नहीं है तो आप पंचवर्षीय योजना में उसकी व्यवस्था करें।

सेना हटा देने की माँग स्त्रियों को करनी चाहिए। जब तक देश का संरक्षण सैन्य-शक्ति से होता है अहिंसा-शक्ति से नहीं होता तब तक पुरुषों का दर्जा ऊँचा ही रहनेवाला है। पुरुष जबरदस्त होता है। और स्त्रियों की शरीर रचना ऐसी होती है कि उन्हें गर्भ-धारणा करनी

पड़ती है। इसलिए स्वभावतः उनके लिए हिंसा कठिन है। अगर समाज का शासन हिंसा ही रहेगी तो पुरुष प्रधान जीवन रहेगा ही। इसलिए मेरी माँग है कि समाज का शासन अहिंसा-पद्धति से ही करने की शक्ति होनी चाहिए। इसके लिए स्त्रियों को शिक्षित बनाना सहज क्रम है।

मिरापुर (बंबई-राज्य)
८-७-'५८

सर्वोदय-समाज-रचना और स्त्रियाँ

पूछा जाता है कि "सर्वोदय-समाज की रचना में स्त्रियाँ क्या मदद कर सकती हैं ?" मैं कहता हूँ सर्वोदय-समाज की रचना में वहाँ बहुत कुछ कर सकती हैं और उनकी मदद की बहुत बड़ी जरूरत है। अभी समाज की जो रचना है, वह सर्वनाश की रचना है और वह पुरुषों ने अपनी बुद्धि से बनायी है। इन पचीस सालों में दो बड़े-बड़े विश्व-युद्ध हुए हैं। इसलिए अब स्त्रियों को आगे आना चाहिए और अपना अधिकार जमाना चाहिए। देश का रक्षण और नियमन ऐसे दोनों अधिकार उन्हें लेने चाहिए, क्योंकि पुरुषों ने जो रचना की है, उसका आधार भय है, अभय नहीं। इसी कारण दो महायुद्ध हो चुके हैं और अब तीसरे का भय लगा हुआ है।

अब पुरुष की बुद्धि ने सर्वनाश की योजना बनायी है। स्त्रियों को उसके बीच रहकर समाज के रक्षण और नियमन के अधिकार अपने हाथ में लेने चाहिए, तभी सर्वोदय होगा। ऐसे सर्वोदय में स्त्रियों का जो काम होगा वह पुरुषों के काम से अधिक ही होगा। पुरुष आज तक भय पर ही सारी रचना करते आये हैं, अभय पर नहीं। समाज व्यवस्था के लिए पुरुषों ने मर्यादा बनायी और स्वयं ही छोड़ भी डाली।

सारी दुनिया को नाश बनाना वे जानते हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिए स्त्रियों को आगे आना चाहिए।

स्त्रियाँ ही सर्वोदय ला सकती हैं

भक्ति-मार्ग में ऐसा आदेश है कि प्रार्थना दूसरे के लिए नहीं अपनी ही चित्त-शुद्धि के लिए करनी चाहिए। परन्तु मैं यह मर्यादा तोड़कर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि "हे प्रभो आइक और डलेस जैसे लोगों को तुम सद्बुद्धि दो। मुझे तुम सद्बुद्धि नहीं दोगे तो दुनिया का कुछ बिगड़नेवाला नहीं है पर उन लोगों में सारी दुनिया को नाश करने की शक्ति है, इसलिए उन्हें अवश्य ही सद्बुद्धि दो।" आज दिन-ब-दिन नयी-नयी सत्ता की रचना हो रही है और नयी-नयी समस्याएँ खड़ी होती हैं, भय निर्माण होता है और समस्याओं का हल नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में सर्वोदय लाना है, तो स्त्री ही उसे ला सकती है।

संस्कृत में धृति मेधा क्षमा कीर्ति वाणी भक्ति मुक्ति और बुद्धि—ये सभी शब्द स्त्रीलिंगी हैं। 'बोध' शब्द पुलिंगी है परन्तु वह बुद्धि का ही परिणाम है। बुद्धि माता है और बोध उसका बालक है, इसलिए स्त्रियों से ही सर्वोदय रचना की आशा रख सकते हैं, क्योंकि मातृ-शक्ति रक्षक देवता है। पुरुष जब हिंसक-शक्ति का आवाहन करते हैं तब स्त्री उसे रूप देती है। 'अभय मां अंबा मां दुर्गा मां काली मां।' काली और दुर्गा के रूप में संहारिणी शक्ति की कल्पना है। इस लिए अब स्त्रियों को समाज की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए।

स्त्रियाँ स्पर्धा की समता की बात में फँसेंगी तो भयंकर होगा। 'स्त्री पुरुष की बराबरी में है' इससे ज्यादा अपमानजनक उक्ति दूसरी क्या हो सकती है? आज तो पश्चिम में स्त्रियों की पलटनें भी होती हैं और स्त्रियाँ हाथ में बंदूक लेकर कवायद भी करती हैं। परन्तु ऐसे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। सभी को यह बात याद रखनी चाहिए कि एक

स्त्री स्त्री के नाते चुनाव लड़े

यों भी देखा जाय, तो हिन्दुस्तान में संविधान के अनुसार महिला राष्ट्रपति भी बन सकती है और प्रधानमन्त्री भी। स्त्रियों के लिए ये सारे स्थान खुले हैं। लेकिन उन्हें किसी भी स्थान पर जाकर पुरुषों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। पुरुष पार्टी बनाते हैं और एक-दूसरे से द्वेष पैदा करते हैं। स्त्रियों को पार्टी नहीं बनानी चाहिए। स्त्रियाँ अगर चुनाव में खड़ी होना चाहें, तो किसी पार्टी की ओर से खड़ी न हों, बल्कि जनता से यह कहकर खड़ी हों कि "हम स्त्रियाँ हैं, हम सबकी सेवा करेंगी। इस खयाल से आप हमें चुनना चाहें, तो चुनें। हम वहाँ जाकर निष्पक्ष भाव से सेवा करेंगी। किसी मनुष्य की ओर अमुक पार्टीवाला, अमुक जातिवाला—इस दृष्टि से नहीं देखेंगी। हम सबकी समान भाव से सेवा करेंगी।"

बँगलोर
१६-१०-'५७

राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करें

मैं तो स्त्रियों को यही सलाह देता हूँ कि वे राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करें और पुरुषों को राजनीति से मुक्त करने का व्रत धारण करें। राजनीति में क्या-क्या हो रहा है, यह बराबर उन्हें निरीक्षण करते रहना चाहिए। चुनाव पुरुषों के हाथ में नहीं होना चाहिए, वह स्त्रियों के हाथ में होना चाहिए। पुरुषों को चोटी स्त्रियों के हाथ में देनी चाहिए। परन्तु आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि पुरुष अब चोटी नहीं रखते हैं और स्त्रियों के बाल लम्बे होते हैं, इसलिए उन्हीं की चोटी पुरुषों के हाथ में रहने का भय है। परन्तु पुरुषों पर स्त्रियों का अंकुश होना चाहिए। स्त्रियों को कहना चाहिए कि "खबरदार! वैर, द्वेष आदि फैलाओगे, तो नहीं

चलेगा।" उन्हें स्वयं पक्ष से परे रहना चाहिए और उनकी ऐसी कोशिश रहनी चाहिए कि पुरुषों को भी पक्षों से मुक्ति मिले। मेरी यह सलाह स्त्रियाँ अमल में लायेंगी, तो हिन्दुस्तान का कलुषित वातावरण निर्मल हो जायगा। किसी भी पक्ष में रहना स्त्री के लिए शोभादायक नहीं है। उसके लिए पक्षातीत रहना ही शोभादायक है, क्योंकि वह मातृ-शक्ति है। दो बेटे लड़ते हैं, तो माँ किसी एक का पक्ष नहीं लेती, दोनों को सँभालती है।

स्त्रियाँ ज्ञान-साधना करें

दूसरी बात यह है कि स्त्रियों को खूब ज्ञानाभ्यास करना चाहिए। कस्तूरबा-स्मारक के काम के बारे में मुझसे पूछा गया था, तो मैंने कहा था कि यह क्षीण कार्य है। यह बहता झरना नहीं है। यह पानी सूख जायगा। शिक्षण की थोड़ी-सी पूँजी लेकर सेविका गाँव में काम शुरू करती है। उसकी शादी हो जाती है, तो वह काम छोड़कर चली जाती है या वहाँ काम करती रहती है। उस छोटी-सी पूँजी पर वह तेजस्वी नहीं बन सकती है और पुरुष-प्रधान समाज में स्वतन्त्र होकर काम करने की शक्ति उसमें नहीं आती है। इसलिए स्त्रियों को ज्ञान में थोड़ा-सा भी पीछे नहीं रहना चाहिए। सरस्वती जैसी ज्ञान में अग्रसर स्त्रियाँ होनी चाहिए। पुरुषों को कम ज्ञान हो, तो चलता है; परन्तु स्त्रियों को बहुत से काम करने हैं, संस्कृति की रक्षा करनी है, प्रकृति से ऊपर उठना है, इसलिए उन्हें पूरा ज्ञान होना चाहिए। पुरुष प्रकृति से ऊपर उठे, ऐसा भी उन्हें करना है। इसलिए स्त्रियों को पूरा ज्ञान चाहिए। उसके साथ ही भक्ति भी चाहिए। स्त्रियों का भक्ति और ज्ञान दोनों चाहिए। उनका ज्ञान गहरा होना चाहिए। उसके लिए ज्ञान-साधना करनी चाहिए। इस ज्ञान के साथ भक्ति जोड़ी जायगी, तब वे समाज का मार्गदर्शन कर सकेंगी और समाज का विकास हो सकेगा।

सरकारी नौकरी और स्त्रियाँ

एक सवाल है : "स्त्रियों को सरकारी नौकरी में पड़ना चाहिए कि नहीं; समाज की आर्थिक रचना में स्त्रियों को क्या करना चाहिए ?"

यह एक बड़ी ही दुःखद कहानी है। जिस तरह यन्त्रों ने ग्रामोद्योग को, परदेशियों ने शहरों के व्यवसाय को और शहरों ने गाँव के उद्योगों को तोड़ने का काम किया है, उसी तरह पुरुषों ने भी स्त्रियों का उद्योग तोड़ने का व्यवस्थित प्रयत्न किया है। वेद में वर्णन आता है कि बुनने का काम स्त्रियाँ ही करती हैं। बुनने का पुंलिंगी प्रयोग संस्कृत में नहीं है। 'वस्त्राणि पुत्राय मातरो वयन्ति।' 'वयन्तीनाम्' याने बुननेवाली। अपने पुत्र के लिए माता वस्त्र बुनती है, ऐसा इसका अर्थ है। परन्तु पुरुषों ने स्त्रियों के हाथ से बुनने का काम ले लिया। स्त्रियाँ अब काडी भरने का काम करती हैं। काडी गुम होती है, तो पुरुष गुस्सा करता है। एक बुनकर के लिए एक स्त्री पूरी नहीं पड़ती है, इसलिए वह दो-दो, तीन-तीन स्त्रियों को पत्नी बनाता है। असम में आज भी स्त्रियाँ बुनती हैं, पर धीरे-धीरे यह धन्धा उनसे छीना जा रहा है।

आश्रम के सरंजाम-कार्यालय में चरखे बनते थे, तो उसकी पेटी पर पालिश करने के लिए स्त्रियों को रखा। बढ़ई सभी पुरुष थे। मैंने पूछा, "यह काम पुरुषों के लिए क्यों रखा है ? स्त्रियों के लिए रखना चाहिए। उनमें कला और सुन्दरता का विचार होता है।" परन्तु इससे तो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनेंगी। इसलिए उन्हें ऐसा ही काम दिया जाता है, जिससे कि वे पुरुषावलम्बी बनें। जो काम स्त्रियों के लिए रखा गया था, वह स्त्रियों से छीन लिया गया, ताकि वे पुरुषावलम्बी बनें।

स्त्रियों के हाथ-पैर में बेड़ियाँ

पुरुषों ने और एक काम किया। उन्होंने स्त्रियों के हाथ-पाँव में बेड़ी डाल दी। उनकी नाक और कान में छेद कर दिया। परमेश्वर अगर

ऐसा चाहता, तो क्या उसमें इतनी अक्ल नहीं थी कि नाक और कान में छेद डालकर ही वह स्त्री को भेजता? परन्तु यह काम पुरुषों ने किया है। उसने उनके हाथ-पाँव में बेड़ी डाल दी है। वह बेड़ी सुवर्ण की है, इसलिए 'बेड़ी' नहीं कहलाती है। लोहे की होती, तो उसे 'बेड़ी' कहते। परिणाम यह होता है कि स्त्रियाँ अकेली बाहर नहीं जा सकती हैं और हिम्मत से काम नहीं कर सकती हैं। पुरुष ने स्त्रियों को ऐसा बना दिया है।

मदालसा* मेरे पास पढ़ती थी। उस समय आश्रम और उसके घर के बीच वीरान जंगल था। सुबह उठकर स्नान करके वह आती थी। उस समय नालवाड़ी में आश्रम था। वह पाँच बजे लालटेन लेकर आती थी। उसकी माँ को डर लगता था कि अकेली लड़की जाती है, तो खतरा है; क्योंकि वह लड़की है और वह मार्ग ऐसा था कि जहाँ बड़ा सन्नाटा रहता था। तो स्त्रियाँ निर्भय होकर कहीं जा सकती है, ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते है। रात में या बड़े तड़के अकेले उन्हें कहीं भेजने में खतरा मानते हैं, क्योंकि उनके शरीर पर गहने रखे जाते हैं। वे गहने अमूल्य होते हैं, इसलिए स्त्रियाँ भी डरती हैं। पुरुषों ने उन्हें अपना बैंक ही बना लिया है। कवि भी इसका गौरव करते हैं। 'स्त्री भीरु है', ऐसा वे गौरवपूर्वक लिखते हैं। 'भीरु' (डरपोक) यह विशेषण स्त्रियों के लिए गौरवास्पद नहीं है। इसमें तो स्त्रियों को अपमान मालूम होना चाहिए।

गाँव की सशक्त महिलाएँ

संस्कृत में स्त्री की बड़ी महिमा गायी गयी है। उसे 'महिला' कहते हैं। महिला याने महान्—सामर्थ्यवान्—शक्तिरूपिणी और पुरुष याने 'देव-भक्ति-पराङ्मुख!' ऐसी स्त्री पुरुष से अधिक सूक्ष्म बुद्धिवाली

* श्रीमती मदालसा अग्रवाल।

है। वह भूखे को भोजन देती है, प्यासे को पानी और जख्मी की सेवा करती है, इसलिए स्त्री निश्चय ही श्रेष्ठ है। स्त्री के पास सूक्ष्म शक्ति है, इसीलिए वह बहुत बड़ी शक्ति हो सकती है। इतनी बड़ी शक्ति उसके पास है, ऐसी बात वेद में आती है। इसलिए पुरुषों की खुशामद करने का प्रयत्न स्त्री को नहीं करना चाहिए। पुरुषों ने स्त्रियों का धन्धा छीन लिया है और फिर स्त्रियों को सुविधा दी—याने उन्होंने स्त्री को अपने हाथ की एक कठपुतली बना लिया। उसमें भी जो स्त्री जितनी शिक्षित है, वह उतनी ही पराधीन है। मैंने गाँव में ऐसी स्त्रियाँ देखी हैं, जो अपने पति को उसकी गलती होने पर गाल में तमाचा मारती हैं! ऐसी स्त्री के सामने पति कुछ नहीं कह सकता है। गाँव की स्त्रियाँ अशिक्षित होती हैं, तो भी वे काम करती हैं, मेहनत करती हैं। गाँव में मैंने ऐसी साध्वी स्त्रियाँ भी देखी हैं, जो मेहनत-मजदूरी करती हैं और अपने पति पर धाक जमाये रखती हैं। शिक्षित स्त्री आरामतलब बनती है। वह रसोई बनाने और बच्चों की देखभाल करने के लिए नौकर रखती है। उसकी आँखें भी इतनी नाजुक बनती हैं कि उन्हें धुआँ सहन नहीं होता।

माता के हाथ की रसोई

भगवान् श्रीकृष्ण जब गुरु के घर गये, तब गुरु को आश्चर्य हुआ कि सारे समाज का उद्धार करनेवाले को मैं क्या पढ़ाऊँ! फिर छह महीने पढ़ाई का नाटक चला। उतना सीखने पर गुरु ने उनका गौरव किया। बिदाई के समय कृष्ण ने गुरु की सेवा की। तब गुरु ने कहा कि "अब तू वरदान माँग।" तब कृष्ण ने यह वरदान माँगा कि "मुझे जिंदगीभर मातृहस्तेन भोजनम् मिले।" कृष्ण को जिंदगीभर माता के हाथ की रसोई खाने को मिली, ऐसा कहते हैं।

अपने हाथ से रसोई बनाकर लड़के को खिलाने से बढ़कर वशीकरण-

शक्ति क्या हो सकती है ? गांधीजी ने भी आश्रम में हम लोगों को रसोई परोसी है। इससे ज्यादा सेवा दूसरी कोई हो नहीं सकती। मातृ-वात्सल्य की बड़ी कीमत है। इसलिए मैं तो रसोई की बड़ी कीमत करता हूँ और उसे 'फाइन आर्ट' कहता हूँ। संगीत, चित्रकला, नृत्य जैसी ललित-कलाएँ है, वैसी ही रसोई भी ललित-कला है। यह कला भी माता की बहुत बड़ी शक्ति हो सकती है। पर आज तो होटल खुलते है और धीरे-धीरे यह कला भी उनके हाथ से जा रही है। स्त्रियों को टप-टप टाइपिस्ट का काम, यांत्रिक काम देते है। कहते हैं कि स्त्रियों की उँगलियाँ जल्दी चलती है, इसलिए उन्हें ऑफिस में बैठाते है। यह काम स्त्रियों को नहीं करना चाहिए, ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। मेरा कहना यही है कि उन्हें ऐसे काम करने चाहिए, जिनमें स्त्री-शक्ति का विकास हो और शांति की रक्षा हो। जिस धंधे में पावित्र्य हो, शांति हो, ऐसा काम करने का आग्रह स्त्रियों को रखना चाहिए। लड़के-लड़कियों का सह-शिक्षण माताओं के हाथ में होना चाहिए। बुनियादी शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो बचपन से लड़कों पर अच्छा संस्कार पड़ेगा और समाज का उद्धार होगा।

स्त्रियाँ शान्ति का काम उठायें

मेरी ऐसी इच्छा है कि घर-घर में स्त्रियाँ ऐसी प्रतिज्ञा करें कि हम समाज में अशांति नहीं होने देंगी और हमारे हाथ उस अशांति को बढ़ावा नहीं देंगे। ऐसी प्रतिज्ञा करके उसके चिह्न के तौर पर वे अपने घर में सर्वोदय-पात्र की स्थापना करें। 'समाज को हम शांति की राह पर ले जायेंगी'—स्त्रियों को ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। देश-व्यापी शांति-सेना का काम करने के लिए स्त्रियों को आगे आना चाहिए। इसलिए उन्हें राजनीति से मुक्त रहना चाहिए और निष्पक्ष, निर्वैर और निर्भय बनना चाहिए। इसके लिए स्त्रियों को गहरा अध्ययन करना चाहिए और सर्वोदय-विचार का सर्वांगीण विचार करना चाहिए। स्त्रियों से यह मेरी

खास प्रार्थना है। मेरी इच्छा है कि सर्वोदय-समाज की स्थापना में उनका ही ज्यादा हाथ रहे।
सोखड़ा (बड़ौदा)
२८-१०-'५८

स्त्रियाँ और सेवा-कार्य

स्त्रियाँ साहित्य के द्वारा भी रचनात्मक कार्य में प्रत्यक्ष हिस्सा अवश्य ले सकती है। उसका अर्थ होगा कि वे वाल्मीकि भी बनीं और राम की सेना में भी दाखिल हुईं। शहर में कितनी ही स्त्रियाँ दु:खी, बीमार, बेरोजगार होती है। उन सबके पास पहुँचना है। उनकी सेवा करनी है। मुझे स्मरण है कि जब किसीके यहाँ रसोई की अड़चन पड़ती, मेरी माँ स्वयं वहाँ पहुँच जाती और रसोई कर आती। अपने घर की रसोई शुरू में ही वह बना रखती थी। मैंने पूछा : "यह स्वार्थ क्यों? पहले हमारे लिए पकाती हो, फिर उनके लिए?" माँ ने कहा : "यह स्वार्थ नहीं, परमार्थ ही है। अगर पहले उनकी रसोई कर आऊँगी और बाद में तुम्हारी करूँगी, तो तुम्हें तो खाने के समय गरम रसोई मिलेगी; लेकिन उनके खाने के समय तक वह सबेरे की रसोई ठंडी हो जायगी!"
एक और काम स्त्रियाँ कर सकती है। अगर वे एक हरिजन बालक को अपने पास रख लें और अपने पुत्र की तरह उसे छोटे से बड़ा करें, तो एक हरिजन-छात्रालय चलाने की अपेक्षा भी वह अधिक महत्त्व का और क्रांतिकारी कार्य होगा। फिर चरखा और चक्की द्वारा वे घर में ग्रामोद्योग और परिश्रमनिष्ठा का वातावरण बना सकती हैं। उसमें उनकी प्रतिभा को भी विकास का काफी मौका मिलेगा।

परिश्रम की दृष्टि

रोटी बनाने का काम माता करती है और माता का हम गौरव करते हैं। लेकिन माता का असली मातृत्व उस रसोई में ही है। अच्छी-से-अच्छी

रसोई बनाना, बच्चों को प्रेम से खिलाना, इसमें कितना ज्ञान और प्रेम-भावना भरी है ? रसोई का काम यदि माताओं के हाथों से ले लिया जाय, तो उनका प्रेम-साधन ही चला जायगा। प्रेम-भाव प्रकट करने का मौका कोई माता छोड़ने के लिए तैयार न होगी। उसीके सहारे तो वह जिन्दा रहती है। कोई यह न समझे कि किसी-न-किसी बहाने स्त्रियों पर मैं रोटी पकाने का बोझ लादना चाहता हूँ। मैं तो उनका बोझ हलका करना चाहता हूँ। इसलिए हमने आश्रम में रसोई का काम मुख्यतः पुरुषों से ही कराया है। मेरा मतलब इतना ही है कि जैसे रसोई का काम माता छोड़ देगी, तो उसका ज्ञान-साधन और प्रेम-साधन चला जायगा, वैसे यदि हम परिश्रम से घृणा करेंगे, तो ज्ञान-साधन ही खो बैठेंगे।

हाथ-पिसाई का महत्त्व

एक गाँव की बात है। वहाँ एक मुसलमान रहता था। उसकी बीबी बीमार हो गयी। उस आदमी की मुझ पर श्रद्धा थी। उसने मुझे बुला लिया और क्या इलाज करना चाहिए, इसके सम्बन्ध में मेरी सलाह चाही। मैंने देखा कि उस बहन को सिवा बदहजमी के और कोई बीमारी नहीं थी। मैंने पूछा कि "घर में आटा कौन-सा आता है ?" जवाब मिला 'मिल का आता है।" फिर मैंने सलाह दी कि आप एक चक्की घर में लगा दीजिये और बड़े तड़के उठकर थोड़ा पीसते जाइये। उसी आटे की रोटी खाइये। सारा रोग दूर हो जायगा और आज से दुगुनी भूख लगेगी। उसने वैसा ही किया। वह बहन धीरे-धीरे चक्की पर पीसने लगी। पन्द्रह-बीस दिनों के बाद मैं उस बहन को देखने के लिए गया और पूछा कि "अब तबीयत कैसी है ?" उसने जवाब दिया कि "अच्छी है। हाथ के आटे की रोटी जब से खाना शुरू किया, तब से भूख बढ़ी।" रोटी भी बहुत बढ़िया लगती है। पीसने का व्यायाम होता है, तो तबीयत भी अच्छी रहती है। स्त्रियों की ताकत बनी रहती है।

किन्तु पीसने का भी काम केवल स्त्रियाँ ही क्यों करें ? पुरुषों को भी थोड़ा पीसना चाहिए। जेल में पुरुष पीसते हैं, यह तो सभी जानते हैं। हम परंधाम के अपने आश्रम में भी हर रोज पीसते हैं। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों पीसते हैं। हाथ के ताजे आटे में जो ताकत है, वह मिल के आटे में नहीं है। आलस्य को त्यागकर परमेश्वर का नाम लेते-लेते चक्की चलाते जाइए। कबीर एक कविता में लिखते हैं कि लोग मन्दिरों में पत्थर रखकर उसकी पूजा करते हैं। लेकिन 'घर की चाकी कोइ न पूजे, जाका पीसा खाय।' जिस चक्की पर हम अपना आटा पीसते हैं और अपनी रोज की रोटी खाते हैं, उस चक्की की पूजा क्यों नहीं करते ? वह भी परमेश्वर है। चक्की की पूजा बेल-फूल चढ़ाकर नहीं होती। उसे हर रोज साफ कर उसमें तेल देकर आटा पीसना ही चक्की की पूजा है।

शान्ति-स्थापनार्थ नेतृत्व करें

इन दिनों जब मैं कुल दुनिया को सोचता हूँ, तो ध्यान में आता है कि अनेक मसले बहुत ज्यादा टेढ़े होते चले जा रहे हैं। कल हमें सुनाया गया कि नेपाल में लोक-सभा खतम हुई और राजा ने हुकूमत अपने हाथ में ली। पाकिस्तान में भी एक मनुष्य की हुकूमत चल रही है। इस तरह मिस्र से लेकर नेपाल तक, सर्वत्र एक व्यक्ति की ही सल्तनत चल रही है। या तो किसी मिलिटरी आदमी के हाथ हुकूमत है या राजा के, जो मिलिटरी के ही आधार पर चलता है। यह एक ऐसी घटना हो रही है कि दुनिया में इतने दिनों तक, करीब दो सौ साल से जो प्रयत्न हुआ, उससे उलटा कदम उठाया जा रहा है। लोकशाही की उलटी दिशा में, एकतन्त्र की तरफ, दुनिया जा रही है। हमारे इर्द-गिर्द यह सब हो रहा है। उसमें जो दोष है, उसे दुरुस्त करना होगा। दोष यह है कि बहुत सारे पुरुष ऐसे हैं, जो पुराने इतिहास में बहे जा रहे हैं, पुराने मन से सोचते हैं। उस मन को छोड़ नहीं सकते। इस जमाने के लिए

जरूरी ताजा मन उनके पास नहीं है, इसलिए वही गुत्थी कायम रहती है और सुलझने के बजाय उलझती जाती है। इसमें कोई ताजगी लानी होगी, नया तरीका दाखिल करना होगा, जो नयी शक्ति लायेगा।

स्त्रियों का दिमाग ताजा !

सर्वोदय-शक्ति ही एक ऐसी शक्ति हो सकती है, जो बीच में पड़कर सारी गुत्थियों को सुलझाये। लेकिन सर्वोदय-शक्ति को जगाने के लिए ऐसी आत्मा की जरूरत है, जिसने अभी तक सियासत में पड़कर अपना दिमाग खराब न किया हो। यह जब मैं सोचता हूँ, तो मुझे बहनों का स्मरण होता है। उन्होंने अपना दिमाग सियासत में पड़कर अब तक खराब नहीं किया है। उनका दिमाग ताजा है। वह लेकर वे समाज में आती हैं, तो बहुत से झगड़े खतम कर सकती हैं। जो आज तक प्रवाह में दाखिल ही नहीं हुई थी, ऐसी बहनें इसमें आती हैं और अपने ढंग से आती हैं, तो मसले हल हो सकते हैं।

स्त्रियों का अपना ढंग : करुणा

आज तक स्त्रियों को सार्वजनिक काम में खींचने की कोशिश हुई है, लेकिन वह पुरुषों के ढंग से काम करने की हुई, स्त्रियों के ढंग से नहीं। उनसे कहा गया कि "चुनाव में आओ, सेना में आओ, राइट-लेफ्ट करो, सामने उड़नेवाला पक्षी दीखे, तो उसे निशाना बनाकर अपनी कुशलता दिखाओ, जो मिलिटरीमैन की कुशलता मानी जाती है।" मैं सोचता हूँ कि पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी बन्दूक तानने का अभ्यास करें, इसमें पुरुषों की बराबरी करें तथा इस तरह खुद को समाज-कार्य में अग्रसर मानें, तो वह कभी भी अग्रसर नहीं हो सकतीं। इससे वे 'पुच्छसर' ही होंगी, क्योंकि हिंसा के मार्ग में स्त्रियों के लिए पचासों बाधाएँ उपस्थित होती हैं, जो पुरुषों के लिए नहीं होतीं। हिंसा-मार्ग में पुरुष ही आगे

त्रिविध शिक्षण

यहाँ जो बहनें आयी हैं, वे एक-दूसरे से परिचय कर घुल मिल जायँ। यहाँ चर्चा-मंडल बनाये जायँ और उन्हें बोलने का अभ्यास हो। यह नहीं होना चाहिए कि स्त्रियाँ दब जाती हैं, झुक जाती हैं। बल्कि यह होना चाहिए कि कहीं भी वे गयीं, तो शेर के समान पराक्रम करती हैं, ताकत के साथ काम करती हैं, इसलिए स्त्रियों की वाक्‌शक्ति खुलनी चाहिए, चिन्तन-शक्ति भी बढ़नी चाहिए और प्रत्यक्ष काम की बातें शान्ति-सेना के काम को लेकर सिखाना चाहिए। इस तरह त्रिविध शिक्षण उन्हें दिया जाना चाहिए।

अक्सर कहा जाता है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं को चुपचाप काम करना चाहिए। लेकिन यह चुपचापवाली बात वे बोलते हैं, जो खुद कभी चुपचाप नहीं रहते, बल्कि समाज में आकर ऊधम मचाते रहते हैं। ये भी मूरख उनकी बातें सुनते और उनसे अपने कामों का उद्‌घाटन करवाते हैं। समझते हैं कि ये मन्त्री-तन्त्री हमारे काम में महानुभूति दिखाते हैं, तो अच्छा है! वे दूसरों से कहते हैं कि चुपचाप काम करो, जिससे कि उनकी ऊधम मचाने की ताकत बनी रहे। यह चुपचापवाली बात तुम बहनों के लिए नहीं है। तुम्हें समाज को प्रभावित करना चाहिए। अपनी सब शक्ति से प्रभावित करना चाहिए।

स्त्रियाँ सरस्वती की प्रतिनिधि

यह ठीक है कि श्रेष्ठ शक्ति चिन्तन-शक्ति ही है। किन्तु सरस्वती कौन है? वहाँ कोई पुरुष नहीं, बल्कि स्त्री खड़ी की गयी है। वेद में वर्णन आता है कि दुनिया को सरस्वती ने सत्य-निष्ठा की प्रेरणा दी है। प्रजा का धारण किया है। वह सारे समाज को सत्कार्य की प्रेरणा दे रही है। सर्वत्र सुमति जगाती है। सरस्वती को ही विद्या की देवता, वाग्देवता माना है। सरस्वती का अधिकार जिन्हें है, वे चुपचाप खामोश

रहें, नीची नजरवाली रहें, सिर ढांक लें, हाथ-पांव में बेड़ियाँ डालें, यह ठीक नहीं। वे बेड़ियाँ सोने की होने के कारण महसूस नहीं होतीं, लेकिन हैं तो बेड़ियाँ ही। वे जितनी वजनदार होती हैं, उतनी महत्त्व की मानी जाती हैं। दो सेर सोने की बेड़ी हो, तो कितनी भारी बन जाती है? इस तरह स्त्रियों को 'बेक' बना दिया जाता है और वे भी उन बेडियों को अलंकार ही मानती हैं! इस तरह स्त्रियों को तरह-तरह की बेडियों से जकड़ लिया गया है। स्त्रियों से कहा जाता है कि नीची निगाह रखो। बात तो ठीक है। लेकिन नीची निगाह रखना अच्छा है, तो सब रखें। स्त्रियों से ही क्यों कहा जाता है? नम्रता जरूर होनी चाहिए, लेकिन सबमें होनी चाहिए। स्त्रियों से कहा जाता है कि चुपचाप काम करो और कहनेवाले तो हमसे भी कहते हैं! लेकिन मैं दुनिया में गरज रहा हूँ। लेकिन जब हमारे साथियों से कहा जाता है कि चुपचाप काम करो, तो मैं कहता हूँ कि काम भी करो और बोलते भी जाओ!

आत्मज्ञानदात्री उमाएँ उपजें

जब ज्ञानी से कहा गया कि तू अतिवादी है, बहुत बोलनेवाला है, तो वह कहता है कि 'छिपाने की कोई जरूरत नहीं है, मैं हूँ अतिवादी, आओ मेरे सामने।' इस तरह हिम्मत के साथ जाना चाहिए। जैसे शंकराचार्य जाते थे, झगड़ा करने के लिए नहीं, बल्कि शंकाओं का निरसन करने के लिए और कहते थे कि "लाओ अपनी सारी शंकाएँ! आपका अज्ञान ज्ञान के सामने टिक नहीं सकता है।" मैं चाहता हूँ कि इस तरह स्त्रियाँ गरजें।

मैं जानता हूँ कि पाँच महीनों में यह सब नहीं हो सकता। लेकिन पाँच महीने यहाँ तालीम पाने के बाद फिर काम करो और फिर-फिर से यहाँ आकर तालीम पाओ।

मैं चाहता हूँ कि स्त्रियों को ज्ञान-विज्ञान में अग्रसर होना चाहिए। स्त्रियों में ज्ञान की किसी प्रकार की कोई कमी मैं पसंद नहीं करूँगा।

पुरुषों से मैं कहूँगा कि तुम कर्मप्रधान बनो, खेती करो, बैल के साथ काम करो, बैल मत बनो। लेकिन स्त्रियों के लिए तो मैं चाहता हूँ कि उन्हें पूरी विद्या मिलनी चाहिए। वेद में कहा है कि अग्नि और इन्द्र ने तपस्या की, लेकिन उन्हें ब्रह्म के दर्शन नहीं हुए। फिर उमा हैमवती के दर्शन उन्हें हुए और उस उमा ने इन्द्र और अग्नि को आत्मज्ञान दिया। इस तरह दुनिया को आत्मज्ञान देनेवाली उमाएँ प्रकट हों।

नेतृत्व माताओं को ही फबता है

मैं खास इस काम के लिए यहाँ आया था। यहाँ से असम जाऊँगा। वहाँ पर स्त्री-शक्ति जगाने का मेरा प्रयत्न रहेगा और मुझे आशा है कि वह जगेगी। वहाँ की समाज-व्यवस्था में स्त्रियों को स्थान है और बहुत खुशी की बात है कि वहाँ पर 'सर्वोदय का नेता कौन है' ऐसा सवाल किया जाता है, तो जवाब मिलता है—अमलप्रभा दास। यह सुनकर आप सबको बहुत आनंद होगा कि एक प्रान्त में नेतृत्व ही स्त्रियाँ कर रही हैं। माताएँ नेतृत्व न करें, तो कौन करेगा ? जो बाध देंगी और हित की बात समझा दें, वही नेतृत्व करें। इसलिए स्त्रियों को सर्वोदय का नेतृत्व करना चाहिए।

मैंने अमलप्रभा को कहा है कि तुम मुझे वहाँ जितना रखना चाहती हो, उतना रखो और मेरा जो भी उपयोग करना चाहती हो, करो। दस साल के बाद मैं वहाँ जा रहा हूँ, तो मुझे कोई उतावली नहीं है। मेरी पूरी शक्ति वहाँ लगेगी। वहाँ यही कोशिश होनी चाहिए कि स्त्री-शक्ति प्रकट हो।

शान्ति-सेना-विद्यालय,
रमरेपुर (वाराणसी)
१७-१२-'६०

—उद्‌घाटन भाषण

नारी से आज के युग की माँग

यह पटियाला शहर है। यहाँ पढ़ी-लिखी बहनें हैं। मैं आशा करता हूँ कि वे सर्वोदय-पात्र का काम उठा लेंगी। गांधी ने लोक-सेवक-संघ की आशा की थी, वैसा लोक-सेवक-संघ आप बनायें, ऐसा मैं चाहता हूँ।

बहनें लोक-सेवक-संघ बनायें

इन दिनों एक नयी कला आयी है। सारे पुरुष पार्टियों में फँसे हैं। अगर कुश्ती के जैसी चुनाव खेलने की बात होती, तो ठीक होता। होना तो यह चाहिए कि दोनों भाई एक ही घर में रहें, प्रेम से खायें-पियें। दोनों के सियासी विचार अलग-अलग हैं, इसलिए दोनों जनता में जाकर अपना-अपना विचार समझाकर वोट माँगें। चुनाव में एक हार जाय और दूसरा जीते, तो भी दोनों प्रेम के साथ रहें। यह होगा, तब तो हिन्दुस्तान की चीज बनेगी। नहीं तो आज पश्चिम से चुनाव लड़ने की जो बात आयी है, उसके कारण गाँव-गाँव में आग लग जाती है। अतः अब बहनों को लोक-सेवक-संघ बनाने के लिए आगे आना चाहिए और पुरुषों से कहना चाहिए कि तुम जानो अपने झगड़े। हम उनमें पड़ना नहीं चाहतीं। तुम लोग बच्चे हो और हम हैं माता, हम किसी पक्ष में नहीं रहेंगी। हम दिल जोड़ने का काम करेंगी। मैं कहता हूँ, जितने पुरुष हैं, वे अलग-अलग पार्टियों में बँटे रहें, पर जितनी स्त्रियाँ हैं, वे कुल-की-कुल हमारे पास आयें, तो फिर देखें, हिन्दुस्तान का नक्शा कैसा बनता है!

बहनों पर बापू की अटूट श्रद्धा

इस प्रकार का एक लोक-सेवक-संघ बनाने की प्रेरणा आपको मिले। मुझे आशा है कि आप यह काम अवश्य करेंगी। बहनों पर बापूजी की बहुत

श्रद्धा थी। उन्होंने बहनों के लिए बहुत प्रयत्न किया है कि वे सामने आयें। ऐसी कोशिश दयानन्द ने भी की थी। वेदों का अध्ययन स्त्रियाँ करें, ऐसा उन्होंने कहा था और उसके लिए कोशिश भी की। इस जमाने में गांधीजी के कारण हजारों बहनें सामने आयीं और उन्होंने बहुत बड़े-बड़े काम किये। गांधीजी के साथ बहुत बहनों ने काम किया। उनका दिल गांधीजी के सामने खुलता था। अगर आप यह काम उठा सकें, तो उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

गांधीजी के जमाने में शराब-बन्दी के लिए दूकानों पर पिकेटिंग करने के लिए किसे भेजा जाय, यह सवाल आया था; तब गांधीजी ने कहा था कि बहनों को भेजा जाय। यह विलक्षण जवाब सुनकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। लोग कहने लगे कि बदमाशों के अड्डों पर बहनों को कैसे भेजा जाय? बापू ने कहा कि अँधेरे के सामने प्रकाश जायगा, तभी काम होगा। बहनें अगर वहाँ जायेंगी, तो वे लोग शरमिन्दा हो जायेंगे। हममें से सज्जन कौन है? बहनें। लोगों ने यह देखा कि जहाँ-जहाँ बहनें गयीं, वहाँ-वहाँ अच्छा काम हुआ। यह गांधीजी की सूझ थी। दंगे-फसाद को रोकने का काम बहनें अच्छे तरीके से कर सकती हैं। जहाँ झगड़े होते हैं, वहाँ शान्ति की मूर्ति खड़ी हो जाय, तो झगड़ा एकदम बन्द हो जायगा। इसलिए मेरा तो पूरा विश्वास है कि शान्ति-सेना का काम बहनें बहुत अच्छा कर सकती हैं।

सर्वोदय-पात्र और बहनें

आज आप सर्वोदय-पात्र का काम कर ही सकती हैं। रोज अपने बच्चे के हाथ से एक मुट्ठी अनाज सर्वोदय-पात्र में डालना चाहिए, जो शान्ति के लिए वोट होगा। इस तरह सर्वोदय-पात्र हर घर में रखा जाता है, तो एक ताकत निर्माण होती है। अपने-अपने सत्संग और गोष्ठियों में ये बातें आप बहनों को बताइये। घर-घर जाकर बहनों को समझाइये कि

हमें शांति के लिए घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखना है। पक्ष-मुक्त होकर लोक-सेवक-संघ बनाना है और सबकी सेवा समान भाव से करनी है। किसी तरफ कोई भेद हम नहीं करते। इन्सान के नाते इन्सान की सेवा करेंगे, भलाई की आवाज उठायेंगे। जहाँ-जहाँ बुराइयाँ हैं, उसके खिलाफ आवाज उठायेंगे, ऐसा निश्चय आप कर सकती हैं। आप तो यहाँ पंजाब को बचानेवाली ताकत पैदा कर सकती हैं।

पटियाला
१५-४-'५९

शान्ति-सेना का काम सँभालें

भूदान-यज्ञ-आरोहण के कार्य में स्त्रियों ने जो हिस्सा लिया है, वह मुझे तो अद्भुत ही मालूम होता है। इनमें अपना अध्ययन, नौकरी, घर-बार आदि सब कुछ छोड़कर बहनें काम में लगी हैं। वे थोड़ी हैं, परंतु उन्होंने बहुत काम किया है। दूसरे प्रान्तों में भी बहनों ने अच्छा काम किया है। इस वक्त हिन्दुस्तान में जिस ढंग से सार्वजनिक चिंतन चलता है, वह ढंग बदले बिना हिन्दुस्तान को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। राजनीति का जीवन में एक स्थान अवश्य है और अच्छा स्थान है। फिर भी जिस तरह आज राजनीति को सर्वस्व मानकर हिन्दुस्तान के अखबार और शिक्षित लोग बातें करते हैं, उससे हिन्दुस्तान का उत्थान नहीं होगा, बल्कि इन दिनों आजादी का अर्थ ही अस्पष्ट [illegible] हो गया है। इसलिए यद्यपि राजनीति का अपना महत्त्व है, तो भी उससे भी अधिक महत्त्व की बातें हैं, इसका एहसास इस देश को होना चाहिए।

स्त्रियाँ पराक्रम करें

भूदान का इतिहास देखा जाय, तो पता चलता कि किस तरह कोरा-पुट के आंदोलन में स्त्रियों ने अलग घूमकर काम चलाया। परन्तु इस

सबका कोई पता ही इस देशको नहीं है। इस आरोहण-कार्य में स्त्रियों ने जो कार्य किया, उसका अपना स्वतंत्र इतिहास रहेगा। मीराबाई का एक पद है :

मातु छाँड़ि, पिता छाँड़ि, छाँड़ि सगा सोई।
असुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेल बोई॥

ठीक इसी तरह से कई बहनों ने अपना सर्वस्व छोड़कर इसमें काम किया है। बहनों के आध्यात्मिक अधिकारों के बारे में उन्हें अच्छी तरह सोचना चाहिए और पुरुषों की इस दुनिया में बगावत करके खड़े होना चाहिए। इसके बिना आज जो गलत मूल्य रूढ़ हुए हैं, वे नहीं बदलेंगे।

पुरुषों पर अंकुश रखें

एक जमाना था, जब यह माना गया था कि स्त्रियों का क्षेत्र घर है। आज भी वह घर उनके हाथ में रहेगा ही। परन्तु इन पचीस सालों के अन्दर पुरुषों ने दुनिया का इस तरह बन्दोबस्त किया है कि आज दुनिया बिलकुल हैरान, बेजार हो गयी है। इस इन्तजाम में दो विश्व-युद्ध हो चुके और तीसरा कब होगा, कह नहीं सकते हैं। स्त्री-पुरुष-समानता के नाम पर ये लोग स्त्रियों के हाथ में भी बन्दूक देना चाहते हैं और स्त्रियों की पलटनें खड़ी करना चाहते हैं, बजाय इसके कि स्त्रियों के हाथ में वह अंकुश आये, जिससे कि वे पुरुषों को ऐसे कामों से परावृत्त कर सकें और अपने मातृत्व की शक्ति जीवन में ला सकें। यह करने के बजाय रंगरूट-भर्ती में उनको भी ख्याल दिया जाता है और उनकी मदद की अपेक्षा की जाती है। दुनिया में यह सब निर्भयता के खयाल से चलता है और स्त्रियाँ भी समझती हैं कि शायद हमारे हाथ में बंदूक आ जाय, तो हम निर्भय बनेंगी। लेकिन निर्भयता का बन्दूक के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बंदूक के बल से अगर निर्भयता आती, तो आज अमेरिका और रूस के लोग निर्भय बन जाते। उनके पास इतने शस्त्रास्त्र हैं, फिर भी

उनके हृदय में धड़कन है। मेरा खयाल है कि उनका तापमान भी साधारण (नार्मल) नहीं रहता होगा। दोनों एक-दूसरे से डरते हैं। यह सारा पुरुषों की व्यवस्था में हुआ है। इसलिए अब स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र में आना होगा और पुरुषों पर अंकुश रखने का काम करना होगा। भारत की स्त्रियों से मेरी यही अपेक्षा है।

करुणा का राज्य स्थापित करें

मैं चाहता हूँ कि भारत की स्त्रियाँ अपनी आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आ जायँ। इसके आगे स्त्रियों के हाथ में समाज का अंकुश जानेवाला है। उसके लिए स्त्रियों को तैयार होना पड़ेगा। स्त्रियाँ शान्ति-सेना का कार्य उठा लेंगी, तो दुनिया बदल जायगी और आज देश के और दुनिया के सामने जो मसले उपस्थित हैं, उनसे मुक्ति होगी। पुरुषों से यह सब होनेवाला नहीं है। अब उनका दिमाग ठिकाने पर नहीं है। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं है। सूझता है तो यही कि सेना बढ़ाओ। इस तरह इस विज्ञान-युग में, जब कि पुरुषों की बुद्धि स्तम्भित हो गयी है, उस समय अगर स्त्रियाँ काम में आती हैं और अपने दैवी गुणों के साथ,-संयमशीलता के साथ, अपनी मातृ-शक्ति के साथ सामने आती हैं, तो करुणा का राज्य स्थापित कर सकती हैं।

नारी में भक्ति, मुक्ति, शान्ति सब कुछ

मैं चाहता हूँ कि शान्ति-सेना का काम भी वे उठा लें। शान्ति शब्द स्वयमेव स्त्रीलिंग है। भक्ति, मुक्ति, शांति आदि सभी शब्द स्त्रीलिंग ही हैं। भगवान् ने गीता में कहा है, 'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।' स्त्रियों में भी कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धैर्य और क्षमा है, ऐसा भगवान् स्वयं कह रहे हैं। ये सब गुण इकट्ठा कर भगवान् अपनी विभूति प्रकाशित कर रहे हैं कि स्त्रियों में मैं यह सब हूँ।

मुझे अफसोस है कि इसका कोई भान भारत में स्कूल और कालेज में पढ़नेवाली स्त्रियों को नहीं है। परन्तु मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ इसे समझें।

शान्ति-सैनिक को पक्ष-मुक्त होना चाहिए। लेकिन आज हमारे बहुत-से पुरुष राजनैतिक पक्षों में बैठे हुए हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि तुम अपनी स्त्रियों को पक्ष-मुक्त कर दो, फिर तुम भले ही पक्षग्रस्त रहो। स्त्रियों को शान्ति-सेना में आना चाहिए, फिर इन पुरुषों को इजाजत है कि वे राजनैतिक पक्षों में बँट जायँ।

पंढरपुर
३१-७-'५८

स्त्रियाँ पुरुषों को लाज रखें

हमारे समाज की रचना पहले से ही ऐसी बनी है कि बायीं ओर स्त्रियाँ और दाहिनी ओर पुरुष रहते थे। आज हमारे समाज की स्थिति उलटी हो गयी है। स्त्रियाँ पिछड़ गयी हैं और पुरुष आगे बढ़ गये हैं। सच पूछिये, तो अब स्त्रियों को समाज को अपने हाथ में लेना चाहिए। उन्हें वामपक्षी होना चाहिए और समाज को आगे ले जाना चाहिए।

क्रान्ति को साकार बनायें

जब-जब मेरे सामने यह प्रश्न आया कि आखिर समाज-क्रान्ति को कौन साकार करेगा, तब-तब मुझे यही मालूम पड़ा कि पुरुषों से दो कदम आगे बढ़कर स्त्रियाँ ही यह काम करें। स्त्रियों को यह काम किस तरह सौंपा जाय, यही मैं सोच रहा था। मैं इसके लिए अहिंसक युक्ति की खोज में था—समाज पर यत्किंचित् आक्रमण न होकर अहिंसा से ही सारा काम हो जाय, यही सोचता था। अहिंसा को विकसित करना हो, तो स्त्रियों को ही अवसर देना चाहिए, ऐसा लगता था। आखिर लोकसम्मति दिखलानेवाला 'सर्वोदय-पात्र' मुझे सूझ पड़ा। तब ध्यान में आया कि स्त्री-

शक्ति इस काम में लगायी जा सकती है। पुरुषों के दिमाग में तो राजनीति के पत्थर भरे हैं। उन्हें निकाले बगैर उनसे काम नहीं हो सकता। इसलिए स्त्रियों को ही इस काम में आगे आना चाहिए। उनके मस्तिष्क में राजनीति न होने के कारण उस समाज में कभी फूट नहीं पड़ सकती। उनमें धर्म-बुद्धि बनी हुई है। लोकमान्य तिलक सदा कहा करते थे कि हिन्दुस्तान में अगर किसीने धर्म को बनाये रखा है, तो स्त्रियों ने ही। ये दो अच्छी बातें स्त्रियों में होने के कारण वे ही यह काम करने योग्य हैं। इसलिए अगर इस काम में उनकी शक्ति का दान मिला, तो बहुत बड़ी क्रान्ति हो सकती है।

प्रेरणा की आवश्यकता

मानव के शरीर में तमोगुण होने के कारण बीच-बीच में उसे चालना या प्रेरणा देना जरूरी हो जाता है। आज तमोगुण से पत्थर बनी हुई कितनी ही अहल्याएँ समाज में पड़ी हैं। उन्हें एक बार प्रेरणा दी जाय, तो वे तत्काल उठकर काम में जुट जायेंगी। घड़ी को भी चौबीस घण्टे में एक बार चाभी देनी पड़ती है। इसलिए बीच-बीच में उन्हें प्रेरणा देनी ही पड़ेगी। फिर भी स्त्रियों के हाथ में समाज सुरक्षित ही रहेगा। । एक बार हाथ में लिया हुआ अच्छा काम वे कभी छोड़तीं ही नहीं। पुरुष अवश्य छोड़ देते हैं। स्त्रियों में धर्म-बुद्धि जाग्रत रहने के कारण ही उनके हाथ में यह काम सौंपने में कोई हर्ज नहीं।

यह सौम्यतम सत्याग्रह

सर्वोदय-पात्र के द्वारा आपको आगे आने का अच्छा अवसर मिला है। आप एक बार यह काम शुरू कर दें, तो फिर वास्तविक कठिनाई पड़ेगा। आप कहेंगे कि 'यह अनाज लाइये', तब [illegible] पड़ करने होंगे, जो इसके उपभोक्ता होंगे। बालक अनाज का ढेर लग जायगा, तभी

लोगों की परीक्षा होगी। लेकिन स्त्रियाँ भी 'सेवक' बनकर आगे क्यों न आयें ? अगर वानप्रस्थ-स्त्रियाँ आगे आयें, तो हमारी बड़ी अच्छी सेना तैयार हो जायगी। फिर मैं कहूँगा, "पुरुषो ! आप अपनी राजनीति चलने दीजिये। अपनी स्त्रियाँ मुझे सौंप दें। मैं देख लूँगा। तब तो आपकी रसोई ही मेरे साथ आ जायगी।"

एक मजेदार बात सुनिये। वर्धा की ओर हरिजनों में कुछ स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो पुरुषों को मांस पकाकर नहीं खिलातीं। पुरुषों को मांस खाने की इच्छा हो, तो उन्हें घर से बाहर पेड़ के नीचे ही मांस पकाकर खाना पड़ता है। उन स्त्रियों का यह कितना बड़ा सत्याग्रह है ! मैं पहले बताया करता था कि जिस दिन पुरुष मांस खायें, उस दिन आप रसोई हो न बनाइये या एक ही बार रसोई बनायें। लेकिन अब मैं उन्हें इससे भी अधिक सौम्य सत्याग्रह सुझाता हूँ। आप पुरुषों से कहिये कि जिस दिन आपको मांस खाने की इच्छा हो और आप उसे खायें, उस दिन हम लोग उपवास करेंगी। अगर स्त्रियाँ ऐसा कदम उठायें, तो वे जीत जायँगी। यह उससे भी अधिक सौम्य सत्याग्रह होगा।

सारांश, अगर स्त्री-शक्ति राष्ट्र-कार्य में लग जाय, तो निश्चय ही राष्ट्र प्रगति करेगा। आज पुरुषों को कुछ सूझ ही नहीं पड़ रहा है। उनको बुद्धि-भ्रम हो गया है। 'जैसे को तैसा' करते-करते आज वे 'एटम' और 'हाइड्रोजन' तक पहुँच गये हैं। उनकी बुद्धि अब आगे नहीं चलती। पुरुषों की लज्जा का वस्त्र-हरण शुरू हो गया है। उनकी लाज सँवारने के लिए स्त्री-शक्ति को आगे आना चाहिए।

राजुरी (बंबई-राज्य)
६-७-'५८

बहनों का आवाहन

सभी बहनों का उपयोग शान्ति-सेना में हो सकता है। लश्कर खड़ा

करना हो, तो बहनों का क्या उपयोग हो सकता है ? उनके हृदय में दयाभाव होता है, इसलिए वे सोचेंगी कि बेरहमी से कत्ल करने में हमारा क्या काम है ? लेकिन शान्ति-सेना में बहनों का उपयोग भाइयों से ज्यादा हो सकता है। इसीलिए मैंने पंजाब में सर्वोदय-मण्डल के मातहत एक 'महिला शान्ति-सेना-मंडल' बनाया। जो शान्ति-सैनिक नहीं बन सकतीं—क्योंकि पूरा समय नहीं दे सकतीं—वे 'शान्ति-सहायक' बन सकती हैं और कहीं भी अशान्ति का मौका आया, तो बीच में आकर रोकने का काम कर सकती हैं। इसीलिए शान्ति-सेना के काम के लिए हमने बहनों का खास आवाहन किया है। वाराणसी में बैठकर शान्ति-सेना का दफ्तर भी एक बहन—निर्मला—चला रही है। इस तरह बहनें आगे आयेंगी, तो शान्ति-सेना का काम जल्दी बनेगा।

बापू के वसीयतनामे में उन्होंने कांग्रेस को लोक-सेवक-संघ बनाने का आदेश दिया था। लेकिन कांग्रेसवाले लोक सेवक नहीं बन सकते थे, कारण उनके दिमाग में सियासत भरी थी। बापू ने समझ लिया था कि सियासत पुराने जमाने की चीज है, जिसके दिन अब लद चुके हैं। इसीलिए उधर १५ अगस्त १९४७ के दिन दिल्ली में बड़ा समारोह हो रहा था, उस समय बापू देहात-देहात में घूम रहे थे। वे समझ चुके थे कि इस अणु-युग में सियासत के दिन नहीं रहे हैं। वे आज होते, तो मुझसे बेहतर तरीके से यही काम करते। आज भी जिस किसी कोने में हैं, वहाँ से मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं कि मेरा बच्चा मेरा काम कर रहा है। महिलाओं से उन्होंने कितनी आशा रखी थी। श्रीकृष्ण भगवान् के बाद महिलाओं में इतनी ताकत लगानेवाले और उनसे इतनी आशा रखनेवाले बापू ही निकले। उनकी उस आशा का स्पर्श बहनों को हो जाय, तो वे खूब काम कर सकती हैं।

एक जमाना था, जब 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झाँसीवाली रानी थी!' कहा जाता था। लेकिन इतिहास में तो एक आध ही बहन खूब

सकती है। मगर शान्ति-सेना में हर बहन काम कर सकती है। इसमें करना ही क्या है ? सिर्फ शान्ति से रहना है। गुस्सा करना हो, तो भी कुछ करना पड़ता है—आँख फाड़नी पड़ती है। लेकिन यहाँ कुछ करना ही नहीं है, शान्ति से खड़े रहना है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि बहनें लोक-सेवक-संघ बनायें और पुरुषों से कहें कि तुम बच्चे सिपाही पार्टी बनाकर लड़ते रहो। लेकिन हम माताएँ नहीं लड़ेंगी। हम शान्ति-सेना का काम करेंगी। यह स्त्रियों के लिए मेरा आवाहन है।

बहनें ब्रह्मविद्या प्राप्त करें

भूगोल, राजनीति, गणित आदि विद्याओं में पुरुष पारंगत होना चाहें तो हों, लेकिन आप सब बहनों को ब्रह्मविद्या प्राप्त करनी चाहिए। मैंने कस्तूरबा ट्रस्ट की बहनों का भी ध्यान इसी ओर आकृष्ट किया है। मैंने उन बहनों से कहा था कि तुम उनको तालीम देती हो, किन्तु ब्रह्मविद्या के अभाव में तुम्हारी इस तालीम का कोई उपयोग नहीं होगा। बीस-बाईस वर्षों की अकेली जवान लड़की प्रतिकूल परिस्थितियों में जब देहातों में काम करेगी, तब आध्यात्मिक शक्ति के बिना कैसे टिक सकेगी ?

अभी मैं चित्तौड़ से आ रहा हूँ। वहाँ मुझे मीरा का दर्शन हुआ था। उसमें कितना त्याग और कितना साहस था ! अपने जमाने की सारी मर्यादाएँ तोड़कर वह बाहर आयी थी। उसने जो बहादुरी दिखायी, वह भारत के इतिहास में अद्भुत है। जहाँ राजस्थान में आज भी परदे का रिवाज है, वहाँ मीरा पर्दा तोड़कर नाच उठती है :

'पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे !'

लोग उसे पागल कहते हैं, फिर भी वह किसीकी परवाह नहीं करती। आखिर यह हिम्मत उसमें कहाँ से आयी ? मीरा की शादी की बात चली, तो उसने कहा कि मैं तो गोपाल के चरणों की दासी हूँ। फिर भी मीरा

की शादी हो गयी, तो उसने अपने पति का भी ऐसा जीवन-परिवर्तन किया कि वह पति न रहकर भक्त बन गया।

मीरा जैसी ही हालत रामकृष्ण की भी थी। पहले रामकृष्ण पागल माने जाते थे। उन्होंने अपनी पत्नी को देवी समझकर पूजा की। मूर्ति के सामने बैठकर जैसे गन्ध, फूल, आरती से पूजन किया जाता है, वैसा ही उन्होंने किया, तो पत्नी का भी जीवन-परिवर्तन हो गया।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि रामकृष्ण और मीरा में जो ताकत थी, वह ब्रह्मविद्या की थी। स्त्रियों को इसी ब्रह्मविद्या की अत्यन्त आवश्यकता है। हृदय में चाह हो, तड़पन हो, तो ब्रह्मविद्या की इच्छामात्रेण प्राप्ति होती है। मैं चाहता हूँ कि सबके हृदय में इसकी प्राप्ति के लिए आकांक्षा हो।

अजमेर
२८-२-'५९

द्विविध कार्यक्रम

मानव-समाज बहनों के कारण टिका हुआ है। हिन्दुस्तान में बहनों ने पीछे रहकर जोर लगाया कि समाज में सद्भावनाएँ टिकें। भारत में जो सद्भावनाएँ टिकी हैं, वह बहनों के कारण। पुरुष बाहर काम करते हैं, परन्तु उन पर भाई, पिता, पति, पुत्र आदि के नाते अंकुश रखना, धर्म-पथ को वे छोड़कर न जायें, इसलिए उन पर नैतिक वजन डालना, यह सारा काम चुपचाप बहनों ने किया है। इसलिए कहा जाता है कि धर्म-रक्षा का काम बहनों ने किया है, इसमें कोई शक नहीं।

अब बहनों को थोड़ा बाहर निकलकर भी काम करना होगा। गाँव में झगड़ा होता है, तो बाहर निकलकर कौन झगड़ता है? पुरुष। लेकिन अब बहनों में यह शक्ति और हिम्मत जगनी चाहिए कि जहाँ सुना कि झगड़ा हो रहा है, वहाँ फौरन पहुँच जायें और बीच में पड़कर कहें कि

हम तुम्हें झगड़ने नहीं देंगे। इसे हमने शान्ति-सेना का नाम दिया है। झगड़ा शान्त कराने में बहनें घायल भी हो जायँ, तो भी उसकी परवाह उन्हें नहीं करनी है। मर-मिटने का भी मौका आये, तो तैयार रहना होगा! तभी बहनें अपना कर्तव्य पूरा कर सकती हैं। यह सब हिम्मत से होगा।

शान्ति-सेना का काम भाई भी करें, ऐसा न हो कि वे लड़ते ही रहें। आज तो कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, अहमदाबाद आदि, शहर अशान्ति के घर हैं। यदि एक बहन ने मार सहन की, तो दंगा बन्द हो जायगा। इतिहास की एक कहानी है कि राघोबा दादा ने बेवकूफी से आक्रमण किया, तो अहिल्याबाई ने मुकाबले के लिए बहनों की सेना भेज दी। आखिर उसे वापस जाना पड़ा। इसलिए बहनें शान्ति-सेना बनायें।

पूर्व-परिचय जरूरी

अब झगड़ों के मौके पर हम पहुँचना चाहते हैं, तो घर घर से पूर्व परिचय होना चाहिए, तभी शान्ति के मौके पर काम कर सकेंगे। वैसे लड़ाई-झगड़े के मौके हमेशा नहीं आते, तब शान्ति-सैनिक बहनें क्या काम करें? उन्हें घर-घर परिचय करना होगा।

अब अम्बर चरखे चलते हैं। इसका कपड़ा कौन खरीदेगा? शहर-वाले। परन्तु बहनों को चाहिए कि वे खादी लेकर घर-घर जायँ और कहें कि यह अपने गाँवों की बहनों की खादी है, इसे खरीदो। यह शान्ति के मौके पर करने का काम है। साथ-ही-साथ सर्वोदय-पात्र, सम्पत्ति-दान का काम भी बहनें कर सकती हैं। पुरुष भी ये काम करेंगे ही। साहित्य-बिक्री का काम भी बहनें कर सकती हैं। विचार-प्रचार की विशेष आवश्यकता है और यह सब बहनों से सध सकता है। इस तरह बहनों का द्विविध कार्यक्रम होगा: (१) अशान्ति के समय लड़ाई-झगड़े शान्त करना। (२) शान्ति के समय सर्वोदय-पात्र, खादी-प्रचार, साहित्य-प्रचार आदि।

बहनें राजनीति में न पड़ें

राजनीति का क्षेत्र पुरुषों के लिए छोड़ दें। सेवा और प्रेम का काम बहनें करें। उपर्युक्त द्विविध निष्ठा से समाज को बहनों द्वारा बल मिलेगा। बहनों के राजनीति में पड़ने से समाज का नैतिक बल घटेगा। बहनें राजनीतिक पार्टी से अलग रहकर ही उन्हें बचा सकती हैं।

बैतूल
१८-१०-'६०

शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा

इंदौर में मैं इसी आशा से आया था कि यहाँ को स्त्री-शक्ति जगे। स्त्री-शक्ति जगाने के लिए यहाँ डबल इंजन लगा है। देवी अहिल्याबाई का स्मरण तो इंदौर के साथ जुड़ा ही है, अब कस्तूरबा ट्रस्टवालों ने यहीं कस्तूरबाग्राम बसाया है, तो कस्तूरबा का स्मरण भी इंदौर के साथ जुड़ गया है। फिर इस डबल इंजन के बल पर भी क्या यहाँ की बहनें नहीं जागेंगी और सर्वोदयनगर बनाने में अपना पूरा हिस्सा नहीं देंगी? मैं मानता हूँ कि यह नामुमकिन है। यहाँ की बहनों से मैं बहुत आशा करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि सारे भारत की स्त्रियों को शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा का काम करना चाहिए। इस समय भारत में चरित्रभ्रंश का कितना आयोजन हो रहा है! उसका विरोध और प्रतीकार अगर बहनें नहीं करेंगी, तो फिर परमेश्वर ही भारत को बचाये, यही कहने की नौबत आयेगी।

क्या चरित्र-भ्रंश देखते ही रहेंगे?

आज शहरों की दशा बड़ी खतरनाक है। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ वहाँ रास्तों पर चलती हैं, तो लड़के उनके पीछे लगते हैं, यह क्या बात है? यह जो शील-भ्रंश हो रहा है, जिसमें गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा ही गिर रही

है, उसका विरोध करने के लिए बहनों को सामने आना चाहिए। माताओं को समझना चाहिए कि अगर देश का आधार शील पर नहीं रहा, तो देश टिक नहीं सकता। शिवाजी महाराज की सुप्रसिद्ध कहानी है। उनके एक सरदार ने लड़ाई जीती और एक यवन-स्त्री को वे शिवाजी महाराज के पास ले आये। शिवाजी महाराज ने उसकी तरफ देखकर कहा : "माँ, अगर मेरी माता तुझ जैसी सुन्दरी होती, तो मैं भी सुन्दर बनता।" ऐसा कहकर उन्होंने उसे आदरपूर्वक बिदा किया। ऐसी संस्कृति जिस देश में चली, उस देश में इतना चारित्र्य-भ्रंश हो और सारे लोग देखते रहें, यह कैसे हो सकता है?

हम कहाँ जा रहे हैं ?

मैं इंदौर आकर इतना दुःखी हुआ कि उसका वर्णन नहीं कर सकता। यहाँ दीवालों पर इतने भद्दे चित्र देखे कि जिनके स्मरण से आँखों में आँसू आ जाते हैं। माता-पिता इन चित्रों को कैसे सहन करते हैं? इससे पहले नौ साल तक मुझे किसी शहर में घूमने का मौका नहीं मिला, इसलिए शहर की हालत मैं जानता नहीं था। लेकिन यहाँ जो मैंने देखा, उससे मेरा हृदय बहुत व्याकुल हो उठा। तभी से मेरे ध्यान में आया कि शील-रक्षा की मुहिम होनी चाहिए और स्त्रियों को शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा का दुहरा काम करना होगा। उसके बिना संस्कृति नहीं टिकेगी। मनु महाराज ने स्मृति में स्त्रियों के लिए कितना आदर व्यक्त किया है : 'उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥' दस उपाध्याय के बराबर एक आचार्य होता है। क्योंकि उपाध्याय ऐसे ही मंत्र पढ़ाते हैं, अर्थ नहीं जानते और आचार्य अर्थ जानते हैं। सौ आचार्यों के बराबर एक पिता होता है और हजार पिताओं से भी एक माता का गौरव बड़ा है। इतना महान् शब्द जिस भूमि में प्रवृत्त हुआ, जहाँ की संस्कृति में स्त्रियों के लिए इतना आदर था,

वहाँ ऐसे गंदे चित्र खुलेआम दिखाये जायें और लड़कों के दिमाग इतने विषय-वासना से भरे हुए हों कि कन्याओं के पीछे लगने में ही उन्हें पुरुषार्थ मालूम पड़े, यह कितनी शोचनीय और लज्जाजनक बात है। जरा सोचिये कि हम कहाँ जा रहे हैं ?

मातृत्व पर प्रहार

हमें इस हालत को रोकना होगा। आपकी पचास राजनैतिक पार्टियाँ आज क्या कर रही हैं ? किसीको नहीं सूझता कि शील-रक्षा हो। जिस भारत में स्त्रियों के लिए इतना आदर है कि वेद में कहा है : "स्त्री अधिक सूक्ष्म बुद्धिवाली होती है, पुरुषों से उदार होती है; क्योंकि पुरुष परमेश्वर की आराधना, भक्ति और दातृत्व में कम पड़ता है। स्त्री माता होती है, वह पुरुष का दुःख जानती है। किसीको प्यास लगती है, तो वह जानती है। किसीको पीड़ा होती है, तो जानती है और अपना मन हमेशा भगवान् की भक्ति में लगाये रखती है।" वेद को हमारे यहाँ 'मातृस्थान' दिया गया है। ज्ञानदेव ने लिखा है : 'नाहीं श्रुति परौती माउली।' श्रुति जैसी दूसरी माता नहीं है, जो दुनिया को अहित से बचाती है और हित में प्रवृत्त करती है। इस तरह श्रुति को माता की उपमा दी गयी है। इस मातृत्व पर आज इतना प्रहार होता है और हम सब खुलेआम उसे सहन कर रहे हैं ! मैं नहीं मानता कि इससे प्रगति की राह खुली होगी ! आपकी पचासों पंचवार्षिक योजनाएँ चलती हों, तो भी कोई काम नहीं होगा। केवल भौतिक उन्नति से देश ऊँचा नहीं उठता। जब शील ऊँचा उठता है, तभी देश उन्नति करता है।

बहनें प्रतिज्ञा करें

आज देवी अहिल्याबाई के पुण्य-स्मरण में यहाँ की सभी माताएँ और बहनें प्रतिज्ञा करें कि शान्ति और शील-रक्षा के लिए हम प्रयत्नशील

रहेंगी। पुरुषगण माताओं की इस प्रतिज्ञा में मदद करें, जिससे भारत में फिर से धर्म का उत्थान हो।

धर्म-संस्थापना का मूलारम्भ

अभी तक धर्म बना ही नहीं था, केवल श्रद्धाएँ बनी थीं। ऐसा धर्म नहीं बना था, जिसके विरोध में जाने की किसीकी इच्छा ही न हो। कहा जाता है कि बहुत करके सत्य, अहिंसा लाभदायी हैं, लेकिन वे अवश्य ही लाभदायी हैं और उस पर न चलेंगे, तो अवश्य हानि होगी, ऐसी निष्ठा और विश्वास मानव के हृदय में अभी तक प्रतिष्ठित नहीं। भले ही हिन्दू, मुसलमान आदि धर्मों के आचार्यों ने धर्म को समझाने की कोशिश की हो, फिर भी वह सफल नहीं हुई। अब विज्ञान का जमाना आया है, अतः सारी दुनिया को अध्यात्म का आधार लेना होगा। पार्थिकता खतम करनी होगी। विज्ञान के जमाने में राजनीति और पार्थिक धर्म को छोड़ना होगा और आध्यात्मिकता स्वीकार करनी होगी। सबको इस पर सोचना चाहिए। इसका मूलारंभ शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा के कार्य से होगा। हम अगर इस काम को उठायेंगे, तो फिर पचासों मसले हल करने की शक्ति भगवान् हमें देगा।

इन्दौर
२०-८-'६० —देवी अहिल्याबाई के उत्सव-समारोह पर

ब्रह्मविद्या-मन्दिर की कल्पना : १० :

दस-बारह दिनों से मैंने ब्रह्मविद्या-मन्दिर की चर्चा छेड़ी है। यह विचार दो-चार साल से मेरे मन में चल रहा था। यह आंदोलन आठ साल से चल रहा है, इस बीच मानसिक संशोधन करने का बहुत मौका मिला। मुझे लगता रहा कि शंकर और रामानुज जैसे एक परम्परा छोड़ गये, जिसका अध्ययन और अनुसरण हजार-हजार वर्षों के बाद भी हिन्दुस्तान में चल रहा है। हिन्दुस्तान के कुल सन्तों पर उनका प्रभाव रहा। उस कोटि की विभूतियाँ इस जमाने में रामकृष्ण परमहंस और गांधीजी ये दो हुईं। इस जमाने का बड़ा भाग्य है कि इसमें और भी कुछ नाम हैं, जो अपनी-अपनी तरफ से भारत में अद्वितीय हैं। परतन्त्रता की हालत में भारत-माता ने दस-पाँच अव्वल दर्जे के रत्न पैदा किये। उन सबमें शायद ये दो नाम और दूसरे भी दो-तीन ऐसे नाम हैं, जो हजारों वर्षों तक बने रहेंगे।

वैसे मेरे मन में नाम का महत्त्व नहीं है, क्योंकि मैंने तो यह माना है कि दुनिया के सबसे श्रेष्ठ पुरुष वे नहीं हैं, जिनका नाम दुनिया ने जाना है। बल्कि वे हैं, जिनका नाम दुनिया ने नहीं जाना है। इसलिए नाम का महत्त्व नहीं है। फिर भी जैसे शंकराचार्य और रामानुज की परम्परा चली, वैसे ज्ञान-परम्परा के अधिकारी—जिनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ—गांधीजी थे। श्री रामकृष्ण, अरविन्द, स्वामी दयानन्द, तिलक और टैगोर—इन सबका अध्ययन करने का मौका मुझे मिला और मैंने अपनी पूर्व-परम्परा के उत्तम फलस्वरूप एक परिपूर्ण जीवन-दर्शन गांधीजी के विचारों में पाया।

जीवन का मूल्य विचारों से अधिक

विचारों की कीमत उतनी नहीं होती, जितनी जीवन की होती है। गांधीजी का जीवन उनकी वाणी द्वारा व्यक्त किये शब्दों से अधिक श्रेष्ठ

था। ऐसे बहुत थोडे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ वाणी से श्रेष्ठ जीवन होता है। अक्सर वाणी श्रेष्ठ होती है, क्योंकि वह सूक्ष्म होती है। बहुत थोड़े उदाहरण ऐसे होते हैं, जहाँ वाणी और बर्तन समान होता है। ऐसे बहुत सत्पुरुष होते हैं, जिनका एक्सप्रेशन (भाव-प्रकाशन) कमजोर होता है। गाधोजी पढ़े-लिखे थे, उनका भाव-प्रकाशन अच्छा था, लेकिन उससे ज्यादा श्रेष्ठ उनका जीवन रहा।

मेरे मन में बार-बार आता रहा कि इतना सागोपांग और मूल्यवान् विचार हमें मिला है, तो उसकी ज्ञान-परम्परा चलनी चाहिए। आज मुझे कोई घुमा रहा है, तो वह विचार ही। भूदान, ग्रामदान तो एक निमित्त है, एक बाह्य आलंबन है। बाह्य आलबन के बिना भी विचार-प्रचार हो सकता है, जैसे महावीर ने किया था। लेकिन बाह्य आलबन रहा, तो विचार-प्रचार कुछ आसानी से होता है, जैसे गौतम बुद्ध का हुआ। मेरा अपना झुकाव महावीर जैसा है और रवैया अख्तियार किया है गौतम बुद्ध का। वह एक बाह्य साधन मिला है, और उसे मुख्यतः विचार-प्रचार के साधन के तौर पर ही मैंने माना है।

ज्ञान-बीज गहरा कैसे जाय ?

मैं सोचता रहा कि यह ज्ञान-बीज गहरा जाना चाहिए, कैसे जायगा ? ध्यान में आया—शंकर, रामानुज के पास जो चीजें थीं, उनमें से एक चीज की कमी गाधीजी के पास रह गयी। वे दोनों Mystic थे, अनुभवी भक्त थे, दोनों ज्ञानी थे। अलावा इसके दोनों समाज-सुधारक और कर्मयोगी थे। भारतभर मे दोनों घूमे। शंकराचार्य की आयु थोड़ी रही और वह पूरी उन्होंने घूमने में लगायी। रामानुज भी काफी घूमे, लेकिन आखिर स्थिर हुए। फिर भी जीवन के हर पहलू को हाथ मे लेने की जरूरत उनको नहीं थी, जो इस जमाने में पैदा हुई है। पारतन्त्र्य के कारण स्वराज्य का काम गाधीजी के साथ जुड़ गया। परिणामस्वरूप

कर्मयोग का माद्दा उनमें अधिक रहा। यह जो लाभ हुआ, वह उन दोनों को नहीं मिला था; लेकिन जैसे यह लाभ हुआ, वैसे एक न्यूनता भी रह गयी। सब धर्मों के सारभूत तत्त्व अहिंसा, सत्य आदि को हमने उठा तो लिया, पर जो मूल में उसकी बुनियाद है—ब्रह्मविद्या की, वह अछूती रह गयी। उसे नहीं उठाया।

ब्रह्मविद्या ही बुनियाद

बचपन से मेरा झुकाव ब्रह्मविद्या की तरफ था। उसकी कमी मुझे महसूस होती थी। बापू के जाने के बाद वह ज्यादा महसूस होने लगी और अब मन में यह निश्चय हो गया है कि इस बुनियाद पर हम नहीं पहुँचते हैं, तो ये ऊपर-ऊपरवाली चीजें नहीं टिकेंगी। कम-से-कम हिन्दुस्तान में तो नहीं ही टिकेंगी। क्योंकि हिन्दुस्तान एक तत्त्वज्ञान की भूमि है। ईसामसीह इतना कहकर शान्त हो गये—"Love thy neighbour as thyself." उस तत्त्वज्ञान का विस्तार उन्होंने नहीं किया। वे सिर्फ इतना ही कहते कि "Love thy neighbour" या "Love thyself" तो काफी था। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि अपने पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा अपने पर करते हो। पड़ोसी पर प्यार करना व्यवहार-धर्म है। वह मानव के विकास के लिए जरूरी है और आनन्द के अनुभव के लिए आवश्यक है। पर उन्होंने यह कहा कि पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा अपने पर करते हो। लेकिन यह असम्भव है, अगर ब्रह्मविद्या तक हमारी पहुँच न हो।

माँ बच्चे पर शायद अपने से ज्यादा प्यार करती है, कम-से-कम उतना तो करती ही है। फिर भी उसे ब्रह्मविद्या की जरूरत नहीं है, क्योंकि शरीर से शरीर जुड़ा है। परन्तु समान आत्मा की एकता आये बिना और वहाँ तक पहुँचे बिना ईसा की वह बात नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान में कोई इतना कह दे कि पड़ोसी पर प्यार करो, तो झट सवाल पूछा जायगा कि क्यों किया जाय? प्यार किया जाय, यह बात समझ में

आती है। परन्तु वहाँ तक किया जाय और क्यों किया जाय, इसका कारण क्या है, यह सवाल आयेगा; क्योंकि यह भूमि ब्रह्मविद्या की है। उसका जवाब गीता देती है, उपनिषदें देती हैं।

आज ही मेरे पास एक किताब आयी। राधाकृष्णन् ने वह प्रेम से भेंट में भेजी है। पुस्तक के आरम्भ में गांधीजी के बारे में एक वाक्य है। वह किताब उन्होंने गांधीजी को ही समर्पण की है। वह वाक्य है कि 'सरमन ऑन दी माउण्ट' भी मुझे वह तसल्ली नहीं देता, जो गीता देती है। इसका कारण और कुछ नहीं है। दोनों ने जो जीवन-धर्म सिखाया, वह एक ही है; परन्तु उसकी जो बुनियाद है—ब्रह्मविद्या, वह गीता में मिलती है।

विचार का अखण्ड प्रवाह बहे

इसलिए मुझे लगा कि इस चीज की कमी इसमें रह गयी है। उसकी पूर्ति किये बिना हमारा यह विचार अखंड प्रवाह में नहीं बहेगा। यह उत्तम विचार है, इसलिए दुनिया के सब सज्जनों को प्रेरणा देगा, यह बात अलग है। किन्तु उसका जो बहाव बहना चाहिए, वह नहीं बहेगा। इसका निर्णय मेरे मन में हुआ और इस बात का विचार किये बिना कि मुझमें उसकी शक्ति है या नहीं है, मैंने ब्रह्मविद्या-मन्दिर शुरू करने का तय किया। शक्ति से भक्ति श्रेष्ठ है। मुझमें शक्ति उतनी नहीं होगी, परन्तु उस विचार की भक्ति मुझमें अवश्य है। उसी भक्ति पर दारोमदार रखकर अब ब्रह्मविद्या-मन्दिर की स्थापना होने जा रही है। स्थान का कभी मुझे आग्रह नहीं रहा। स्थान आगे बदल भी सकता है और नहीं भी बदल सकता। अभी तो वह परंधाम-पवनार में होगा।

मन्दिर का संचालन स्त्रियों के हाथ

यह भी मुझे लगा कि ऐसे आश्रम की स्थापना में कुल व्यवस्था बहनों के हाथ में होनी चाहिए। यह भी एक प्यास मेरे मन में थी। स्त्रियों की साधना हमेशा गुप्त रही है। उसका प्रभाव किसी-न-किसी व्यक्ति पर

जरूर रहा है, परन्तु वह साधना प्रकट होने की बहुत जरूरत है। उसके बिना विश्व-शांति अकेले पुरुष नहीं कर सकते। ब्रह्मविद्या में स्त्री-पुरुष भेद नहीं रहता, इसलिए दोनों उसमें रहेंगे।

यह इस जमाने की माँग है, नहीं तो बुद्ध ने तो स्त्री को प्रथम प्रवेश नहीं दिया था और दिया तो यह कहकर दिया कि 'मैं एक खतरा उठा रहा हूँ।' लेकिन वह तो पुराना जमाना था। मैं तो इसमें खतरा मानता हूँ कि पुरुष के साथ स्त्री को स्थान न हो। उसमें ब्रह्मविद्या अधूरी रहती है, उस ब्रह्म के टुकड़े-टुकड़े होते हैं। मैं स्त्रियों के हाथ में संचालन देकर उस ब्रह्म के उलटे टुकड़े करने नहीं जा रहा हूँ। जमाने की आवश्यकता है, इसलिए संचालन स्त्रियों के हाथ मे रहेगा, तो वह सुरक्षित ही रहेगा।

सहज ही यह विचार अपनी लड़की राजम्मा के पास मैंने व्यक्त किया। वह लड़की भावुक है। उसे यह विचार जँचा। और न जँचता, तो भी आश्रम की स्थापना हो चुकी मेरी कल्पना में, ऐसा मैंने माना। मैंने कहा कि तुम्हें अगर यह बात जँचती है, तो भूदान-यज्ञ में पाँच-सात साल से जो बहनें काम कर रही हैं, उनसे पूछो। उसने व्यक्तिगत संपर्क तथा कुछ पत्र-व्यवहार आदि भी किया, जिसके परिणामस्वरूप पाँच-सात बहनें यहाँ आयी हैं।

सहयोग की अपील

मित्रों से मेरी यही प्रार्थना है कि इस काम में जितनी मदद वे दे सकते हैं, दें। सबसे बड़ी मदद, हमारे विचार का, जो ब्रह्म-विचार की बुनियाद है, संशोधन बाकी है। वह संशोधन हो या न हो, परन्तु हम यह समझें और अपने जीवन को उस दिशा में मोड़ने की कोशिश करें। हमारे मित्र और बाह्य मदद जो जरूरी हो, वह करें, ताकि इसका बाह्य बोझ किसीको महसूस न हो।

काशी का वास (सोकर)
१२-३-'५९

नये युग की नारी

[आचार्य दादा धर्माधिकारी]

पुरुष होने के कारण स्त्रियों की समस्याओं का प्रत्यक्ष अनुभव मुझे होना संभव नहीं। इस विषय पर मैंने कितना ही विचार क्यों न किया हो, फिर भी मेरा ज्ञान परोक्ष ही रहेगा। आत्म-प्रत्यय का आधार न होने से वह अनुमान प्रमाण पर ही आधारित रहेगा। इसलिए साधारणतः जैसे मैं लड़कों के सामने आत्म-प्रत्यय के साथ बोल लेता हूँ, वैसे लड़कियों के सामने बोल नहीं सकता। लड़कियों की सभा में बोलते समय मुझे थोड़ा संकोच ही होता है, फिर भी इस युग के इस मुख्य सिद्धान्त पर कि लड़के और लड़कियों की तथा स्त्रियों और पुरुषों की भूमिका समान होनी चाहिए, मैं कुछ विचार व्यक्त कर सकता हूँ। मैं यह भी कह सकता हूँ कि स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी ही नहीं, वरन् उससे भी श्रेष्ठ भूमिका प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा।

शायद एक पुरुष के नाते मैं यह बात अधिक अच्छी तरह कह सकूँगा। जिस दोष के कारण नारी आज तक पुरुषों की बराबरी का स्थान न पा सकी, उसका ज्ञान स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होना संभव है।

आज आपमें से जिन्हें प्रमाण-पत्र मिले हैं, उन्हें 'स्नातिका' कहा जायगा। पुराने जमाने में 'स्नातक' शब्द केवल लड़कों के लिए ही होता था, क्योंकि ब्रह्मचर्य केवल लड़कों के लिए ही विहित था। बारह वर्ष तक गुरुगृह में रहकर, अनेक विद्याओं और कलाओं का अध्ययन कर विद्या-विनय-सम्पन्न ब्रह्मचारी अवभृथ-स्नान करता और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। अवभृथ-स्नान करनेवाला ही 'स्नातक', याने गृहस्थाश्रम

के योग्य व्यक्ति माना जाता था ! लेकिन उन दिनों लडकियों का न तो 'उपनयन' (जनेऊ) होता था और न आज की तरह कोई उन्हें शिक्षण ही देता था। यही कारण है कि उनके लिए ब्रह्मचर्य या स्नातक शब्द का प्रयोग नहीं होता था। लडकी 'सयानी' होते ही 'स्नातिका' समझ ली जाती थी। वह गृहस्थी में प्रवेश करने और मातृपद पाने योग्य मान ली जाती थी। 'पतिगृह-प्रवेश' ही उसका 'गुरुगृह-प्रवेश' और 'ऋतुस्नान' ही उसका 'स्नातकत्व' माना जाता था।

प्राचीनकाल में स्त्रियों के लिए उपनयन या व्रतबंध विहित न होने के कारण ही उन्हें वेदाध्ययन और वैदिक कर्म का अधिकार भी नहीं था। उनके लिए मनु ने मंत्रयुक्त विधि का निषेध किया है। आज भी हम लोग देखते हैं कि पंडितजी (पुरोहितजी) को स्त्रियों से अभिषेक करवाना हो, तो वे रुद्री का पाठ न कर महिम्नस्तोत्र का ही पाठ करते हैं। याने आज भी हमारी धर्मविधि में स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं है। यही कारण है कि आज भी उनका वेदाध्ययन का संस्कार नहीं किया जाता। उनके लिए न तो गुरुगृह-निवास है और न अवभृथ-स्नान ही।

आजकल हम लोग विभिन्न विद्यालयों एवं विद्यापीठों द्वारा स्त्री-शिक्षण का जो उपक्रम कर रहे हैं, वह एक युगप्रवर्तक कार्य है। प्राचीन वाङ्मय में इसका कोई विशेष संकेत नहीं मिलता। शिक्षण-कार्य के लिए माता के नाते पुरुष की अपेक्षा स्त्री हजारगुना श्रेष्ठ मानी गयी है। मनु ने एक जगह कहा है कि "दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता श्रेष्ठ है और हजार पिताओं की अपेक्षा गुरु के नाते माता श्रेष्ठ है।" किन्तु प्रत्यक्ष जीवन में इस बात का स्पष्ट प्रमाण या कोई चिह्न न मनु के युग में और न बाद के युग में ही कहीं दिखाई पड़ता है। स्मृतियों में भी इसका 'लिंग' कहीं नहीं दीखता। 'लिंग' माने चिह्न या सूचक संकेत ! स्मृतियों में यदि कहीं एकाध वचन हो, तो उसका संकेत श्रुतियों में कहीं-न-कहीं दिखाई पड़ ही सकता है। मनु के युग में

एक स्त्री 'आचार्य' दिखाई नहीं पड़ती। अवश्य ही उससे पहले श्रुति में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियों के अंगुलियों पर गिनने लायक छि पुट उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। फिर भी स्त्री के आचार्य होने का उल्ले कहीं नहीं मिलता। जब स्त्रियों के लिए गुरुकुल ही नहीं थे, तो स्त्र आचार्या कैसे होगी?

आज हम लोग स्त्रियों की भूमिका में क्रान्ति करना चाहते हैं आधुनिक शिक्षण शास्त्र का यह एक महनीय प्रमेय है कि गुरु के नाते स्त्री पुरुषों से हजारगुना श्रेष्ठ है। इसका प्रत्यक्ष प्रयोग हमें प्रगतिशील राष्ट्रों में दिखाई पड़ता है। क्रान्तिकारी राष्ट्रों में अग्रगण्य माने जानेवाले रूस में शिक्षक की अपेक्षा शिक्षिका की योग्यता अधिक मानी जाती है। शिक्षण के क्षेत्र में जब तक इस प्रमेय का प्रयोग निष्ठापूर्वक नहीं होगा, तब तक हम समाज में मूल्य-परिवर्तन नहीं कर सकते। अतएव जिस अर्थ में लड़कों के लिए 'स्नातक' शब्द रूढ़ हो गया है, उसी अर्थ में अब वह लड़कियों के लिए भी शिक्षण और जीवन में प्रयुक्त होना चाहिए।

उत्क्रान्ति या विकास का एक मूलभूत सिद्धान्त यह है कि एक का उद्धार दूसरा नहीं कर सकता। हरिजनों का उद्धार सवर्ण नहीं कर सकते। इसीलिए बापू जब हरिजन-सेवा का आन्दोलन चलाते थे, तब कहते थे कि "अस्पृश्यता-निवारण हरिजनों के उद्धार के लिए नहीं, बल्कि सवर्णों के उद्धार के लिए है। 'अस्पर्श-भावना' से सवर्णों का अध:पतन हो गया है। अतः आत्मशुद्धि के लिए उन्हें हरिजन-सेवा करनी चाहिए। हरिजनों का उद्धार तो हरिजन ही कर सकते हैं। 'अपना उद्धार हम ही कर सकते हैं' यह अबाधित सिद्धान्त है।"

यही न्याय स्त्रियों के लिए भी लागू है। पुरुष ने नारी को पराधीन रखा, उसका विकास होने नहीं दिया, इस पाप का प्रायश्चित्त उसे करना ही चाहिए। लेकिन वह होगा उसके अपने ही कल्याण के लिए, उसके अपने ही उद्धार के लिए—स्त्री पर मेहरबानी, कृपा या करुणा के रूप में

नहीं। स्त्री का उद्धार पुरुष कर नहीं सकता। वह तो उसे स्वयं ही करना होगा। दूसरे के मरने से हमें स्वर्ग नहीं मिलेगा।

आज ये युवतियाँ स्नातिकाएँ बनकर जीवन के विशाल क्षेत्र में, वास्तविक ससार में, प्रवेश कर रही है।

आज ही समाचारपत्रों में श्री सुचेता कृपालानीजी के संबंध में एक समाचार प्रकाशित हुआ है। उसे पढकर मेरा चित्त अस्वस्थ और व्यग्र हो उठा। मन में विचारों का कहर मच गया। वह समाचार हमारे समाज में स्त्रियों की वर्तमान भूमिका का भडकीला प्रतिबिम्ब है। कहा जाता है कि नोआखाली के गुंडों ने सुचेताजी को भगा ले जाने का षड्यंत्र किया। सुचेताजी कोई साधारण स्त्री नहीं हैं। वे भी कांग्रेस की प्रधानमंत्रिणी बन सकती है, राष्ट्राध्यक्षा हो सकती है, मुख्यमंत्रिणी बन सकती हैं, केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी रह सकती है। कदाचित् कल वे जवाहरलालजी की तरह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की प्रधानमन्त्रिणी भी हो सकती हैं अथवा भारतीय लोकतन्त्र की अध्यक्षा भी हो सकती है। किसी विश्वविद्यालय के कुलपति होने की योग्यता तो निश्चय ही उनमें है। ऐसी स्त्री के सम्बन्ध में यह समाचार है। इस समाचार में हमें क्रोध आने जैसा बहुत कुछ है। फिर भी वह कुछ भी अस्वाभाविक या विलक्षण नहीं मालूम पड़ता। यह चीज स्त्रियों की वर्तमान परिस्थिति की द्योतक है।

कुछ लोग कहेंगे : "अरे, इसमें कौन-सी विलक्षण बात है? सीमाप्रांत में तो स्त्रियों की तरह पुरुषों को भी भगाया जाता है। बड़े-बडे पुरुषों तक को भगाते हैं। फिर आप सुचेताजी के इस उदाहरण से स्त्रियों के बारे में इतना विपरीत अनुमान क्यों निकालते हैं?" आक्षेप सही है, लेकिन उसमें विचारों की घालमेल हो गयी है। यह सच है कि सीमाप्रान्त में पुरुषों को भगाया जाता है। लेकिन किन पुरुषों को? धनवान् पुरुषों को ही! स्त्रियों के बारे में ऐसी बात नहीं। सिर्फ सत्ताधारी या धनवान् स्त्रियों को ही भगाया जाता है, ऐसी बात नहीं। हर स्त्री को भगाये

जाने का भय बना रहता है। स्त्री धनवान् नहीं, धनरूप है। द्रव्य, वित्त या गोधन की तरह स्त्री भी एक धन है। इस भयानक स्थिति की तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। मुझे यह असह्य लगती है, आपको भी वह असह्य मालूम पड़नी चाहिए।

जब तक 'स्त्री' और 'श्री' के बीच अभेद बना रहेगा, तब तक स्त्री की भूमिका श्री से अलग रह नहीं सकती। महाभारत में भीष्म ने स्त्री को 'श्री' कहा है। मनु ने भी उन्हें 'घर की दौलत' और 'घर की शोभा' कहा है। 'श्री' और 'स्त्री' शब्द के उच्चारण में तो साम्य है ही। महाभारत में द्रौपदी को दुर्योधन के दरबार में आने का बुलावा जाता है। इस प्रसंग का वर्णन मोरोपंत ने किया है। उस दूत से द्रौपदी कहती है : 'श्री म्हण, नच स्त्री म्हण।' अर्थात् "अरे! उन्होंने 'श्री' मँगवायी होगी, स्त्री नहीं।" लेकिन समाज में 'स्त्री' और 'श्री' के उच्चारण में ही नहीं, अर्थ में भी अभेद है। विदर्भ में स्त्री को 'लक्ष्मी' कहने की प्रथा है। 'स्त्रियों का डिब्बा' 'लक्ष्मी का डिब्बा' कहलाता है। भले ही साहित्य और पुराण में लक्ष्मी विष्णुपत्नी हो, लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में तो वह जड़ संपत्ति ही मानी जाती है। 'लक्ष्मी' शब्द धन और संपत्ति का ही द्योतक है। महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्माचार्य ने राजा को उन चीजों की सूची दी है, जिनके चुराये जाने का भय रहता है। उस सूची में 'स्त्री' भी है। मुझे लगता है कि स्त्रियों के सभी प्रश्नों में यह एक 'यक्ष-प्रश्न' है। अगर यह हल नहीं होता, तो भले ही अन्य सब प्रश्न हल हो जायँ, उसकी सामाजिक भूमिका कतई बदल नहीं सकती।

इस वस्तुस्थिति का परिणाम हमारी भावनाओं, विचारों और संस्कारों पर हो गया है। स्त्री विश्वास की पात्र नहीं। आप लोग मेरे इस कथन का गलत अर्थ न करें। मैं यह नहीं कहता कि स्त्री मिथ्या या कपटी होती है। वह सर्वदा प्रामाणिक और सत्यनिष्ठ हो सकती है—बिलकुल पुरुषों की तरह सत्यवादी और सदाचारी हो सकती है, फिर भी वह

विश्वासपात्र नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय कदाचित् अंग्रेजी के 'अन्-रिलायेबल' शब्द से अधिक स्पष्ट हो सकता है। 'अन्रिलायेबल' का अर्थ 'डिसऑनेस्ट' (बेईमान) नहीं। सर्वथा 'ऑनेस्ट' (ईमानदार) व्यक्ति भी 'अन्रिलायेबल' हो सकता है। उदाहरणार्थ, छोटा बच्चा या बूढ़ा व्यक्ति सर्वथा प्रामाणिक हो सकता है, फिर भी शरीर-श्रम के कार्य मे हम उस पर निर्भर नहीं रह सकते। स्त्री रक्षणीय होने के कारण उसे उसके अपने भरोसे छोड़ा नहीं जा सकता। इस दृष्टि से वह अविश्वसनीय न होने पर भी विश्वासपात्र भी नहीं है। उसके बारे में हम निश्चिन्त नहीं रह सकते, क्योंकि वह निर्भय नहीं।

आप कहेंगे कि "भई, यह तो लाचारी है, क्योंकि स्त्री की दुर्बलता स्वाभाविक है।" मैं अधिक विवाद मे पड़ना नहीं चाहता, लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि स्त्री का यह स्वभाव नहीं, परम्परागत संस्कार ही है—इस विषय में प्रकृति को दोष देना गलत है। दुर्बलता शरीर का धर्म हो, तो भी वह मन का धर्म नहीं बनना चाहिए, यह भी मैं अवश्य कहना चाहता हूँ। मन कमजोर न हो, तो बस है। इस विषय में स्त्रियाँ पुरुषों को मात कर सकती है। जिसका मन दुर्बल होता है, उसकी उन्नति संभव नहीं। दुर्बल मन में कोमल भावनाएँ भी नहीं रह सकतीं। कमजोर मन में करुणा नहीं समाती। 'क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति', यह सोलह आना सच है।

स्त्रियों का मन 'कोमल' होता है, इसका यह अर्थ किया जाता है कि वह कमजोर होता है, लेकिन 'कोमल' का अर्थ 'दुर्बल' नहीं है। 'नाजुक' से मतलब 'कमजोर' नहीं है। किन्तु स्त्रियाँ 'भीरु' मानी गयी हैं, इसीलिए उनमें चंचलता की भी कल्पना की गयी है। सर्वत्र यही माना जाता है कि कामिनी भी लक्ष्मी जैसी ही चंचल होती है। दशरथ जैसा चक्रवर्ती राजा भी जब कैकेयी के हठवाद से हैरान हो गया, तो उसने कहा: 'अनित्य-हृदया हि ताः' अर्थात् स्त्रियाँ अस्थिरवृत्ति की होती हैं। Frailty, thy

name is woman—'चंचलता, तेरा नाम स्त्री है'—इस वाक्य में शेक्सपीयर ने मानो वाल्मीकि के इस वाक्य का अनुवाद ही कर दिया है। प्राचीन सुभाषितकार तो इससे भी आगे बढ़ गये। उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि "पुरुषों के भाग्य की तरह स्त्रियों का चरित्र देवता भी जान नहीं सकते, फिर मानव की, पामर की, क्या बात!"

स्त्रियों के विषय में ऐसी धारणा बनने का एकमात्र कारण है—उनकी कायरता! भीति और नीति, भीति और प्रीति की कद्दू और चाकू जैसी टेढ़ है। इसलिए वास्तविक नीति और वास्तविक प्रीति को स्त्री के जीवन में स्थान ही नहीं रहा है। उपन्यास और कहानियों का प्रेम अलग है और स्वायत्त एवं समृद्ध हुए जीवन को जिस प्रेम को जरूरत होती है, वह अलग है।

लज्जा और भीरुता स्त्रियों के भूषण माने गये हैं, इसीलिए वे दुनिया में खुलकर जी भी नहीं पातीं। वे जन्मभर लजाती हुई ही जीती हैं, डरती-डरती ही जीती हैं। उन्हें जीने में भी लाज लगती है। 'हम जी रही हैं', इसके लिए मानो दुनिया के समक्ष क्षमा-याचना करती हुई बेचारी जीवन बिताती हैं।

स्त्री-जीवन के इस मूलभूत प्रश्न की ओर आप लोगों का ध्यान आकृष्ट कराना चाहता हूँ। समाज में सिर्फ स्त्री के सुरक्षित होने मात्र से उसकी समस्या हल हो नहीं सकती। उसे पुरुषों की बराबरी की भूमिका प्राप्त नहीं हो सकती। पुरुषों द्वारा स्त्रियों की रक्षा की जा सकती है। सभी दुष्ट पुरुषों का विनाश कर देने पर स्त्रियाँ सुरक्षित हो जायेंगी। उन्हें पुरुषों से भय नहीं रहेगा। लेकिन इतने से वे स्वतंत्र कभी नहीं हो सकतीं। जब तक स्त्री 'स्वरक्षित' न होगी, तब तक वह सच्चे अर्थ में 'सुरक्षित' नहीं हो सकती। जब तक उनमें दुष्टों और गाँव के गुंडों का प्रतीकार करने की क्षमता नहीं आती, तब तक स्त्री-जीवन सुरक्षित और स्वतंत्र हो नहीं सकता। जो स्वरक्षित नहीं, वह सुरक्षित भी नहीं। गत

महायुद्ध में बहुत-सी स्त्रियों ने युद्ध में अद्भुत शौर्य दिखाया, विलक्षण धैर्य और साहस के काम किये। लेकिन इतना करने पर भी उन राष्ट्रों के लिए स्त्रियों की सुरक्षा का प्रश्न शेष ही रहा। शत्रु से रक्षणीय चीजों में अब भी स्त्रियों की गणना की जाती है। इतनी महान् झांसीवाली 'लक्ष्मीबाई' ने भी, जिसने कि समर-कर्म की पराकाष्ठा कर दिखायी, अन्त में अपने शरीर की रक्षा के लिए अग्नि का ही सहारा लिया। स्त्री की प्रतिष्ठा, उसकी इज्जत, उसका शील—इस तरह शरीरनिष्ठ बन गया है।

एक दूसरे भी अर्थ में गत महायुद्ध में स्त्रियों की शरीरनिष्ठ उपयोगिता का प्रमाण मिला है। शत्रुपक्ष का गुप्त भेद लाने के लिए गुप्तचरों के काम में स्त्रियाँ नियुक्त की गयी थीं। मोहक स्त्रियाँ शत्रु के पास भेजी जाती थीं। इस तरह पुरुषों के चित्त में रही हुई स्त्री-शरीरविषयक कामना से लाभ उठाया गया। कुछ लोग कहते हैं : "इन स्त्रियों ने अपने देश के हित के लिए अपना शील तक बेच दिया।" लेकिन मुझे लगता है कि स्त्रियों ने पुरुषों की स्त्री-विषयक कामना से लाभ उठाकर अपने शरीर का दुरुपयोग कर लिया। आखिर अप्सराएँ भी तपस्वियों के साथ क्या करती थीं ? यही तो 'रूप का सौदा' कहलाता है। इस तरह अपने शरीर का उपयोग करना किसी भी स्त्री को भूषणास्पद नहीं मानना चाहिए। इसमें स्त्री-शरीर की विडंबना और मानवता का अपमान है।

स्त्री को 'प्रेममूर्ति' कहा गया है। कहा जाता है कि उसका हृदय प्रेम का अखण्ड स्रोत है। लेकिन मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक बताना चाहता हूँ कि दुर्बल अन्तःकरण में प्रेम रह ही नहीं सकता। आजकल हम लोग जिसे स्त्री का प्रेम कहते हैं, वह प्रेम न होकर निष्ठा है। एक दास के चित्त में अपने स्वामी के प्रति अटल निष्ठा हो सकती है। पुराने जमाने में ईमानदार नौकरों की स्वामिनिष्ठा प्रसिद्ध ही हुआ करती थी। लेकिन वह निष्ठा भक्ति या प्रेम नहीं है। 'पतिनिष्ठा' का अर्थ पति-प्रेम

उसे हम 'विनय' कहेंगे। 'विनय' माने 'सदभिरुचि'। वह मानव की रुचि अरुचि और व्यवहार से व्यक्त होती है। हमारे प्राचीन साहित्य में विद्या और विनय का अभेद्य संबंध माना गया है। मानव की अभिरुचि उसके उठने-बैठने, बोलने, चलने, देखने-सुनने, याने जीवन के सभी व्यवहारों से व्यक्त हुआ करती है। जिसे हम सांस्कृतिक मूल्य कहते हैं, उसमें मुख्यतः दो गुणों का समावेश होता है—एक सुसंस्कृत अभिरुचि और दूसरा, 'बैलेन्स', सन्तुलितता या तारतम्य। विनयहीन विद्या में सन्तुलितता नहीं रहती। मानव के मनोरंजन में भी नहीं, उसके मनोरंजन में ही, मुख्यत उसकी अभिरुचि व्यक्त होती है। अन्य जीवों को कष्ट देनेवाला मनोरंजन सदभिरुचि से रहित हुआ करता है। अगर बच्चा मेंढक की जान ले रहा हो, तो उसका वह खेल आसुरी माना जाता है। जिस खेल में दूसरों के सुख का ध्यान होगा, वही सुसंस्कृत और सदभिरुचिपूर्ण कहा जायगा। इस विनयशीलता को ही समाज-शास्त्र की भाषा मे 'सामाजिकता' कहा जाता है। शिक्षा के कारण यह सामाजिकता बढनी चाहिए। जीवन के प्रत्येक व्यवहार में हमें दूसरे के साथ काम करने की कला प्राप्त होनी चाहिए। स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक व्यवहार में भी यह कला व्यक्त होनी चाहिए। जीवनव्यापी सदभिरुचि की यही कसौटी है।

पुरुषों के साथ निर्भय होकर रहने के लिए स्त्री को अपने हाड़-मांस में गहरी पैठी हुई बहुत-सी गलत धारणाओं को उसे त्याग देना होगा। ऐसी धारणाओं मे एक यह भी है कि 'स्त्री का शरीर कॉच के बर्तन जैसा है। इसलिए उसकी इज्जत कुरकुरी है।' अगर आप लोग इस धारणा से चिपकी रहेंगी, तो आपके साथ कॉच के बर्तन की तरह ही व्यवहार होगा। आपके जीवन पर यह लेबुल लगाना पड़ेगा—'Glass with care'—'संभालो, यह कांच है।' कांच के बर्तन अन्य बर्तनों के साथ कभी रखे नहीं जा सकते। बल्कि वे एक-दूसरे के साथ भी रखे नहीं जा सकते। एक-दूसरे के साथ रखना हो, तो उनके बीच बीच में रुई या ...

भूखा मरना पड़ता है। जब तक स्त्रियों के मन में यह गलत और खुराफाती धारणा बनी रहेगी, तब तक स्त्रियों के बीच भी परस्पर मैत्री हो नहीं सकती। उनमें भी परस्पर अविश्वास ही बना रहेगा। बीच-बीच भूखा मरना पड़ेगा। यही कारण है कि 'पुरुषों का मत्सर' प्रसिद्ध नहीं है, 'स्त्रियों का ही मत्सर' 'सौतियाडाह' प्रसिद्ध है। 'स्त्रियों की मैत्री' प्रसिद्ध नहीं। पुरुष ने अपने मित्र के लिए पत्नी के गहने भी बेच दिये, ऐसी कथाएँ मिलती हैं; लेकिन यह कभी सुनाई नहीं पड़ता कि किसी स्त्री ने अपनी सहेली के लिए पति का सोने का कंकण या घड़ी बेच दी हो। स्त्री का प्रेम अपने परिवार के सीमित क्षेत्र में ही अपना चमत्कार दिखलाता है। अब समाज के व्यापक क्षेत्र में उनका तेज और माधुर्य प्रतीत होना चाहिए। उस प्रेम की उत्कटता और निरपेक्षता से हमारा सामाजिक जीवन उन्नत और उदात्त होना चाहिए। ऐसा होने के लिए भीरुता स्त्री का भूषण न होकर दूषण है, यह बात लड़कियों के हृदय में अंकित कर देनी चाहिए।

'भीरुता की तरह लज्जा भी स्त्री का एक गुण है'—यह भी एक भ्रम लोगों में प्रचलित है। वास्तव में लज्जा गुण न होकर दोष ही है। भय की तरह वह भी बहुत बड़ा दुर्गुण है। उनके लिए मर्यादा और संयम के अर्थ में ही 'भय' और 'लज्जा' बतायी गयी है। यहाँ 'भय' शब्द का अर्थ 'मर्यादा' और 'लज्जा' शब्द का अर्थ 'तारतम्य' है। शिष्टाचार और शालीनता की मर्यादाएँ स्त्रियों की तरह पुरुषों को भी पालनी चाहिए। शालीनता या विनय दोनों के जीवन की शोभा है। लज्जा का अर्थ विनय नहीं। लज्जा कुलीनता नहीं, शालीनता नहीं। आप लोगों में बुरके या परदे में जीने के स्थान पर खुली हवा में ही जीने की क्षमता होनी चाहिए। अगर आप लोग काँच के बर्तन हों, तो आपको बंद आलमारी में सावधानी के साथ रखना पड़ेगा। संभल-संभलकर, बचा-बचाकर आपका उपयोग करना पड़ेगा। आपको काँच का बर्तन बनने में ही गर्व मालूम पड़ता हो,

उसे हम 'विनय' कहेंगे। 'विनय' माने 'सदभिरुचि'। वह मानव की रुचि अरुचि और व्यवहार से व्यक्त होती है। हमारे प्राचीन साहित्य में विद्या और विनय का अभेद्य संबंध माना गया है। मानव की अभिरुचि उसके उठने-बैठने, बोलने, चलने, देखने-सुनने, याने जीवन के सभी व्यवहारों से व्यक्त हुआ करती है। जिसे हम सांस्कृतिक मूल्य कहते हैं, उसमें मुख्यतः दो गुणों का समावेश होता है—एक सुसंस्कृत अभिरुचि और दूसरा, 'बैलेन्स', सन्तुलितता या तारतम्य। विनयहीन विद्या में सन्तुलितता नहीं रहती। मानव के मनोरंजन में भी नहीं, उसके मनोरंजन में ही, मुख्यतः उसकी अभिरुचि व्यक्त होती है। अन्य जीवों को कष्ट देनेवाला मनोरंजन सदभिरुचि से रहित हुआ करता है। अगर बच्चा मेंढक की जान ले रहा हो, तो उसका वह खेल आसुरी माना जाता है। जिस खेल में दूसरों के सुख का ध्यान होगा, वही सुसंस्कृत और सदभिरुचिपूर्ण कहा जायगा। इस विनयशीलता को ही समाज-शास्त्र की भाषा में 'सामाजिकता' कहा जाता है। शिक्षा के कारण यह सामाजिकता बढ़नी चाहिए। जीवन के प्रत्येक व्यवहार में हमें दूसरे के साथ काम करने की कला प्राप्त होनी चाहिए। स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक व्यवहार में भी यह कला व्यक्त होनी चाहिए। जीवनव्यापी सदभिरुचि की यही कसौटी है।

पुरुषों के साथ निर्भय होकर रहने के लिए स्त्री के अपने हाड़-मांस में गहरी पैठी हुई बहुत-सी गलत धारणाओं को उसे त्याग देना होगा। ऐसी धारणाओं में एक यह भी है कि 'स्त्री का शरीर काँच के बर्तन जैसा है। इसलिए उसकी इज्जत कुरकुरी है।' अगर आप लोग इस धारणा से चिपकी रहेंगी, तो आपके साथ काँच के बर्तन की तरह ही व्यवहार होगा। आपके जीवन पर यह लेबुल लगाना पड़ेगा—'Glass with care'—'सँभालो, यह काँच है।' काँच के बर्तन अन्य बर्तनों के साथ कभी रखे नहीं जा सकते। बल्कि वे एक-दूसरे के साथ भी रखे नहीं जा सकते। एक-दूसरे के साथ रखना हो, तो उनमें बीच बीच में रुई या कागज या

मुआ भरना पड़ता है। जब तक स्त्रियों के मन में यह गलत और खुराफाती धारणा बनी रहेगी, तब तक स्त्रियों के बीच भी परस्पर मैत्री हो नहीं सकती। उनमें भी परस्पर अविश्वास ही बना रहेगा। बीच-बीच मुआ भरना पड़ेगा। यही कारण है कि 'पुरुषों का मत्सर' प्रसिद्ध नहीं है, 'स्त्रियों का ही मत्सर' 'सौतियाडाह' प्रसिद्ध है। 'स्त्रियों की मैत्री' प्रसिद्ध नहीं। पुरुष ने अपने मित्र के लिए पत्नी के गहने भी बेच दिये, ऐसी कथाएँ मिलती हैं; लेकिन यह कभी सुनाई नहीं पड़ता कि किसी स्त्री ने अपनी सहेली के लिए पति का सोने का कंकण या घड़ी बेच दी हो। स्त्री का प्रेम अपने परिवार के सीमित क्षेत्र में ही अपना चमत्कार दिखलाता है। अब समाज के व्यापक क्षेत्र में उसका तेज और माधुर्य प्रतीत होना चाहिए। उस प्रेम की उत्कटता और निरपेक्षता से हमारा सामाजिक जीवन उन्नत और उदात्त होना चाहिए। ऐसा होने के लिए भीरुता स्त्री का भूषण न होकर दूषण है, यह बात लड़कियों के हृदय में अंकित कर देनी चाहिए।

'भीरुता की तरह लज्जा भी स्त्री का एक गुण है'—यह भी एक भ्रम लोगों में प्रचलित है। वास्तव में लज्जा गुण न होकर दोष ही है। भय की तरह वह भी बहुत बड़ा दुर्गुण है। उनके लिए मर्यादा और संयम के अर्थ में ही 'भय' और 'लज्जा' बतायी गयी है। यहाँ 'भय' शब्द का अर्थ 'मर्यादा' और 'लज्जा' शब्द का अर्थ 'तारतम्य' है। शिष्टाचार और शालीनता की मर्यादाएँ स्त्रियों की तरह पुरुषों को भी पालनी चाहिए। शालीनता या विनय दोनों के जीवन की शोभा है। लज्जा का अर्थ विनय नहीं। लज्जा कुलीनता नहीं, शालीनता नहीं। आप लोगों में बुरके या परदे में जाने के स्थान पर खुली हवा में ही जाने की क्षमता होनी चाहिए। अगर आप लोग कांच के बर्तन हों, तो आपको बंद आलमारी में सावधानी के साथ रखना पड़ेगा। सँभल-सँभलकर, बचा-बचाकर आपका उपयोग करना पड़ेगा। आपको कांच का बर्तन बनने में ही गर्व मालूम पड़ता हो,

उसे हम 'नि...'
अरुचि ...हो आये
औ ...लेकिन उसका...
विनयशीलता के ...

सक्षेप में मैंने आपका...

१. स्त्री सुरक्षित नहीं, ...

२. अब से शिक्षण के विकास ... ये दो तत्त्व दाखिल होने चाहिए।

३. शिक्षण का स्वाभाविक परिणाम विन...

४. स्त्रियों को स्त्रियों और पुरुषों के साथ स... के नाते रहने की कला सधनी चाहिए।

५. समानत्व याने समानरूपत्व नहीं, स्त्री पुरुष... होगी। इसका यह अर्थ नहीं कि वह उसके जैसी होगी।... अर्थ 'नकली पुरुष' नहीं। यहाँ 'समानता' का अर्थ 'तुल्यता... भूमिका पुरुषों की भूमिका के तुल्य रहेगी। श्रेष्ठ भी हो... विषयों में समान भी रहेगी। लेकिन उससे कम दर्जे की कभी... स्त्री की प्रतिष्ठा सिर्फ 'वीरमाता' या 'वीरपत्नी' होने में ही न... गना' होने में है। 'वीरपुरुष की पत्नी' के नाते विचरने से वह नहीं होगी! जिसका पराक्रम स्वायत्त (स्वाधीन) होगा, वही वी... है। वीर पुरुष की तरह वीर-स्त्री बनने में आपको भूषण, गर्व म... चाहिए।

६. 'नया युग आयेगा' भगवान् बोल चुके हैं। पुराने मूल्य समा... होकर उनकी जगह नयी दुनिया के नये मूल्य आयेंगे। उन नये मूल्यों का आधारभूत परम मूल्य है, स्त्री-पुरुषों का सामान्य मनुष्यत्व। उसकी प्रतिष्ठा शिक्षा से बढ़नी चाहिए, जीवन में रूढ़ होनी चाहिए।